ओ३म्

गायत्री मीमांसा

लेखक
डॉ० शिवपूजनसिंह कुशवाह शास्त्री
साहित्यालङ्कार, एम० ए०

प्रकाशक
श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध संस्थान
ज्वालापुर-२४६४०

प्रकाशक :
श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोधसंस्थान,
वेद मन्दिर (गीता आश्रम),
अशोक सिनेमा के सामने, ज्वालापुर २४६४०७
जनपद: : सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

वेद व सृष्टिसंवत् १, ९७, २९, ४९०८७
विक्रम संवत् २०४४

द्वितीय संस्करण : १९८७

मूल्य : ५.०० रुपये मात्र

मुद्रक :
दुर्गा मुद्रणालय,
सुभाष पार्क ऐक्सटेंशन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

सम्पादकीय

गायत्री की महिमा महान् है। प्राचीन और अर्वाचीन सभी ऋषि-मुनियों, महापुरुषों, लेखकों, विचारकों और चिन्तकों ने गायत्री के गौरव का गान किया है। मनु आदि स्मृतियों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत आदि इतिहास एवं काव्यग्रन्थों, भागवत आदि अठारह पुराणों में—सर्वत्र गायत्री के महत्त्व का वर्णन हुआ है। इसके गायत्री, सावित्री, वेदमाता, वेदमुख, गुरुमंत्र आदि अनेक नाम भी इसके महत्त्व को सूचित करते हैं।

गायत्री मंत्र में ज्ञान, कर्म और उपासना—तीनों का सम्मिलन होने से यह त्रिवेणी बन गई है। इसके ऋषि, देवता और छन्द सभी में विशेषता होने के कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है।

जिन्होंने भी गायत्री मंत्र का अनुष्ठान किया है, इसका जप किया है, वे सभी लाभान्वित हुए हैं और जो इसका जप करेंगे वे भी निश्चय ही लाभान्वित होंगे। वस्तुतः जपने के लिए एकमात्र मंत्र गायत्री ही है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज श्रीकृष्ण आदि महापुरुष इसका जप करते थे। सीता माता भी इस पवित्र मंत्र का जप करती थीं।

गायत्री मंत्र बहुत छोटा-सा है परन्तु इसका अर्थ बहुत विस्तृत है। अनेक विद्वानों ने गायत्री पर लेखनी उठाई है और इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है परन्तु इस मंत्र की पूर्ण व्याख्या नहीं हो सकी।

श्री शिवपूजनसिंह कुशवाह ने भी गायत्री मंत्र पर यह लघु पुस्तिका लिखी है। इसमें जहाँ गायत्री के महत्त्व और गौरव सम्बन्धी प्रमाण प्रस्तुत किये हैं वहीं रावण, उव्वट, महीधर, सायण आदि पौराणिक और आर्यसमाज के विद्वानों के

भाष्यों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सभी उद्धृत प्रमाणों के जो पते दिये हैं वे ठीक हैं।

इसका सम्पादन करते हुए जहाँ कुछ त्रुटियाँ थीं उनका संशोधन कर दिया गया है। इस संस्कृत बहुल ग्रन्थ को दुर्गा मुद्रणालय के कार्य-निरीक्षक श्री सुरेशकुमार कटाराजी ने जिस कुशलता से शुद्धरूप में छापने में सहयोग दिया है तदर्थ उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

वेदसदन
एच १/२ माडल टाउन,
दिल्ली-११०००६

विदुषामनुचरः
—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

भूमिका

दिनांक १८, १९, २० मई १९५७ ई० (संवत् २०१४ वि०) में स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, जिला बलसाड (गुजरात) में 'गायत्री-महायज्ञ' हुआ था। वैदिक विद्वान् पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने यह आयोजन किया था। उस अवसर पर मैंने जादू-विद्या का प्रदर्शन किया था। उस समय २४ पृष्ठ की 'गायत्री-माहात्म्य' नामक एक मेरी पुस्तिका भी पण्डितजी ने प्रकाशित की थी। ३० वर्ष के पश्चात् उसमें कतिपय संशोधन करके अब यह 'गायत्री-मीमांसा' के नाम से आपके हाथों में है। सभी प्रमाणों को मूल ग्रन्थों को देखकर ही अंकित किया गया है। प्रथम संस्करण में पतों की कुछ अशुद्धियाँ रह गई थीं, क्योंकि पुस्तिका शीघ्रता में लिखी गई थी। यथा—'य एतां वेदगायत्रीं पुण्यां…प्रणश्यति' का पता महाभारत, भीष्म पर्व १४।१६ दिया गया था, पर अध्याय १४ श्लोक १६ में यह नहीं है। श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्द जी गिरि महामण्डलेश्वर कनखल ने "गायत्री-मीमांसा" नामक १५१ पृष्ठ की पुस्तक लिखी है जिसके अनुवादक व्याकरण-साहित्य-न्यायतीर्थ स्वामी वासुदेवानन्द शास्त्री हैं। पुस्तक संवत् २०१८ वि० में विज्ञान प्रेस, ऋषिकेश में मुद्रित हुई है, इसकी प्रथमावृत्ति है। इसके पृष्ठ ५३ में भी इस श्लोक का पता म० भा० भीष्म० १४।१६ है। इसी की प्रतिलिपि प्रायः सभी आर्यसमाजी व पौराणिक लेखकों ने भी कर दी है। किसी ने भी मूल प्रमाण का महाभारत में अन्वेषण नहीं किया।

महामहोपदेशक आचार्य विश्वश्रवाः वैदिक रिसर्चस्कॉलर की "पंच महायज्ञ-विधिभाष्यम्" पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसपर संवत्, सन् आदि कुछ नहीं है। इसकी भूमिका इनकी विदुषी पत्नी श्रीमती देवी 'वेदशास्त्रिणी'

ने लिखी है। यही भूल इन्होंने भूमिका पृष्ठ ४२ में भी की है। इस श्लोक का पता दिया है—'महाभारत भीष्म० १४।१६'। पं० मदनमोहन विद्यासागर ने भी 'जन-कल्याण के मूलमंत्र' पृष्ठ १२ (घ) में यही भूल की है। यह वि० संवत् २०२२ में प्रकाशित हुई है। मैंने इस प्रमाण का मूल ग्रन्थ से अन्वेषण करके सही पता दिया है। इस प्रकार सभी पतों को शुद्ध कर दिया गया है।

३-७-१९८७ ई० —शिवपूजनसिंह कुशवाह शास्त्री

ओ३म्

गायत्री की उत्पत्ति

सभी वैदिक धर्मावलम्बी यह मानते हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इसलिए गायत्री मंत्र परमात्मानिःश्वसित है, परन्तु 'गायत्री' मंत्र की रचना के सम्बन्ध में पौराणिकों का ऐसा विचार है कि जब विश्वामित्र ऋषि ने त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा तो इन्द्र ने उसे स्वर्ग से वापस कर दिया। इसपर विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर त्रिशंकु को वहीं आकाश में ठहराकर उसी समय नूतन सृष्टि करनी प्रारम्भ कर दी। त्रिशंकु की छाया 'कीकट' पर पड़ी, इसलिए वह क्षेत्र (मगधगया) अपवित्र माना जाने लगा तथा उनके मुख से लार टपकी जिससे कर्मनाशा नदी हुई और जल अपवित्र माना गया। श्री विश्वामित्र जी ने उसी समय केला, नारियल आदि वनस्पतियाँ तथा 'गायत्री' की रचना की। आगे चलकर विश्वामित्र व इन्द्र में सन्धि हो जाने से यह रचना अधूरी रही। यह कथानक बड़ा रोचक तथा लम्बा-चौड़ा है। **यह सब नक्षत्रों के सम्बन्ध में आलंकारिक वर्णन है।**

वास्तव में 'गायत्री' मंत्र का साक्षात्कार सबसे पहले विश्वामित्र ऋषि ने ही किया था। इसीलिए उनके नाम से यह मंत्र चला आता है। उन्होंने उसमें विद्यमान विश्व का कल्याण करनेवाली शक्ति के रहस्य का उद्‌घाटन किया।

गायत्री के भिन्न-भिन्न नाम

गुरुमंत्र—जब बालक—ब्रह्मचारी सर्वप्रथम गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास जाता है तो सबसे पहले वेदारम्भ-संस्कार में 'गायत्री मंत्र' का उपदेश किया जाता है, इसलिए इसे 'गुरुमंत्र' कहते हैं।

गायत्री—गायत्री छन्द में होने के कारण इसको 'गायत्री' कहते हैं। 'स्तुत्यर्थक' 'गै' धातु से 'अवन्' प्रत्यय। अतः ऋग्वेदीय प्रारम्भिक मंत्र

'अग्निमीळे' से पदार्थ-स्तवन का प्रारम्भ होता है, अतः उस छन्द का नाम **'गायत्री'** पड़ा।

"गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः, त्रिगमना वा विपरीता, गायतो मुखादुदपतदिति च ब्राह्मणम्"—[निरुक्त, दैवतकाण्ड ७।१२]

भाष्य—'गायत्री छन्दः' **'गायतेः स्तुतिकर्मणः'** 'गायति अर्चति कर्मा" (निघं० ३।१४) ततः **'अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन्'** (उणा० ३।१०५) धातोर्बाहुलकात् अत्रन् प्रत्ययः, स च टिद्धर्मवान्। गायत्री स्त्रियाम्। 'त्रिगमना विपरीता' त्रिगमना त्रिभिः पादैर्गमनं प्रापणं यस्याः त्रिगमना, त्रिगाया गायो गमनं त्रिगाया विपरीता गायत्रि-गायत्री, अथ गायतो मुखादुदपपत् वेदज्ञानं गायत उपदिशतः परमेश्वरस्य मुखात् सर्वप्रथमम् "अग्निमीळे पुरोहितम्०" इति-उदगच्छत-तस्माद् गायत्री-इत्यालंकारिकं कथनमिति ब्राह्मणम्।"[1]

अर्थ—'गायत्री'—(क) स्तुत्यर्थक 'गै' धातु से 'अत्रन्' प्रत्यय। अतः, ऋग्वेदीय प्रारम्भिक मंत्र 'अग्निमीळे' से पदार्थ-स्तवन का प्रारम्भ होता है, अतः उस छन्द का नाम 'गायत्री' पड़ा।

(ख) अथवा, यह छन्द (त्रिगमन) तीन पादोंवाला होता है। अतः गम और 'त्रि' के विपर्यय से 'गायत्री' निष्पन्न हुआ। त्रिगम-गमत्रि—गायत्री।

(ग) ब्राह्मण कहता है कि गान करते हुए परमेश्वर के मुख से सबसे पूर्व यह छन्द निकला। अतः इसका नाम 'गायत्री' है। गै+यत् से 'रक् प्रत्यय', गायत्र-गायत्री।"[2]

मन्त्रराज—सम्पूर्ण फलदायी मंत्रों में इसे ही सर्वश्रेष्ठ, शीघ्र फलदायक व अवश्य फलदायक पाया गया। इसको सिद्ध कर लेने पर अन्य मंत्रों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, अतः इसे मन्त्रराज कहा गया।

कामधेनु—गायत्री मंत्र के सिद्ध कर लेने पर जो चाहिए वह प्राप्त होता है।

---

१. स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक 'विद्यामार्तण्ड' कृत "निरुक्त सम्मर्शः" पृष्ठ ५७८ [संवत् २०२३ वि० सन् १९६६ ई० प्रथम संस्करण, आर्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर से प्राप्य]

२. पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार कृत "निरुक्त भाष्यम्" उत्तरार्द्ध, पृष्ठ ४६३ [चैत्र १९८२ वि०, दयानन्दाब्द १०२, मार्च १९२६ ई०, प्रथमावृत्ति]

अतः इसका नाम कामधेनु है। वसिष्ठ ऋषि के पास शायद यही गायत्रीरूपी कामधेनु थी।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने स्वयं लिखा है—**"अनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।"**

धर्म—जो सत्य न्याय का आचरण करना है, **अर्थ**—जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, **काम**—जो धर्म और अर्थ से इष्ट-भोगों का सेवन करना है और **मोक्ष**—जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है। इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो।"[1]

अतः इस मंत्र का नाम 'कामधेनु' है।

गुरुमंत्र—वेदारम्भ संस्कार में गुरु अपने शिष्य को इसका उपदेश करता है, अतः इस मंत्र का नाम 'गुरुमंत्र' पड़ा।

वेदमुख—यह गायत्री मंत्र वेदों में मुख्य मंत्र है, अतः इसको 'वेदमख' भी कहते हैं।

सावित्री—इस मंत्र में 'सविता' से प्रार्थना की गई है और इसका देवता भी 'सविता' है, अतः यह सावित्री कहलाती है। मनुस्मृति २।८३ में इसे 'सावित्र्यास्तु' कहा है।

वेदमाता—उपनिषत्काल में गायत्री का माहात्म्य इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग 'गायत्री' को 'वेद की माता' या 'छन्दों की माता' कहने लग गये थे। अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त ७१ मन्त्र १ में भी इसे 'वेदमाता' कहा गया है।

वेदादि सच्छास्त्रों में गायत्री मंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—[ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ६२ मंत्र १०; यजुर्वेद अ० ३ मंत्र ३५; २२।९; ३०।२; ३६।३; सामवेद उत्तरार्चिक १४६२] तैत्तिरीय संहिता; १।५।६।४;

---

१. "पंचमहायज्ञविधिः" पृष्ठ ८६९ [दयानन्दग्रन्थमाला, शताब्दी संस्करण, प्रथमभाग, दयानन्दाब्द १००, संवत् १९८१ वि० सन् १९२५ में मंत्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित]

४।१।११।१; तैत्तिरीयारण्यक १।११।२; १०।२७।१; तैत्तिरीयारण्यक (आन्ध्र) १०।३५; मै० सं० ४।१०।३; ऐतरेय ब्राह्मण ४।३२।२; ५।५।६; ५।१३।८; ५।१९।८; कौषीतकी ब्राह्मण २३।३; २६।१०; गोपथ ब्राह्मण १।१।३४; दैवत ब्राह्मण ३।२५; शतपथ ब्रा० २।३।४।३९; १३।६।२।९; १४।९।३।११; तै० आ० ४।११।२; १०।२७।१; तै० आ० (आन्ध्र) १०।३५, बृह० उ० ६।३।११; जै० उ० ब्रा० ४।२८।१; श्वे० उ० ४।१८; आश्व० श्रौ० ७।६।६; ८।१।१८; शांखा० श्रौ० २।१०।२; २।१२।२; १०।६।१७; १०।९।१६; आप० श्रौ० ६।१८।१; शांखा० गृ० २।५।१२; २।७।१९; ६।४।८; कौशिकसूत्र ९१।६; साममंत्र-ब्राह्मण १।६।२९; बौधायनधर्मशास्त्र २।१०।१७।१४; खादिरगृह्य सू० २।४।२१; आपस्तम्ब गृ० सू० ४।१०।९-१२; आपस्तम्ब श्रौ० २०।२४।६; मानव श्रौ० ५।२।४।४३; ऋग्विधान १।१२।५

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने 'पंचमहायज्ञविधि' में जहाँ गायत्रीमंत्र लिखा है वहाँ उन्होंने यह भी लिखा है कि—"एवं चतुर्षु वेदेषु समानो मंत्रः" ।[1]

चारों वेदों में यह मंत्र (गायत्री) समान है परन्तु वर्तमान उपलब्ध अथर्ववेद में यह गायत्री मंत्र नहीं है।

कुछ पौराणिक व कुछ आर्यसामाजिक विद्वानों ने अथर्ववेद से 'गायत्री' मंत्र प्रदर्शित करने का प्रयास भी किया है। यथा—

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ-विद्वद्वरिष्ठ-कनखल-बंगला-मठाधीश-१०८ स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी गिरि महामण्डलेश्वर महाराज ने "गायत्री मीमांसा" में अथर्ववेद का पता दिया है—"अथर्व० ३।१०।२"*

परन्तु 'अथर्ववेद संहिता' में इस पते पर गायत्री मंत्र नहीं है।

आचार्य विश्वश्रवाः वैदिक रिसर्च स्कॉलर की पत्नी श्रीमती देवी शास्त्रिणी ने अथर्व० १९।७१।१ के **"स्तुत मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्"** को ही गायत्री मंत्र माना है। वे लिखती हैं—"वेदमाता गायत्री को ही कहते हैं।…"[2]

१. वही, पृष्ठ ८६५
* "गायत्री-मीमांसा" पृष्ट २
२. "पंचमहायज्ञविधिभाष्यम्" भूमिका पृष्ठ ३८

परन्तु यह भी वास्तविक गायत्री मंत्र नहीं है।

पं० क्षेमकरण दास जी 'त्रिवेदी', पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार मीमांसातीर्थ तथा पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर प्रभृति ने इसे गायत्रीमंत्र नहीं माना है और न 'वेदमाता' का गायत्रीपरक अर्थ किया है।

श्रीमती देवी शास्त्रिणी के मत का पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार विद्या-मार्त्तण्ड के भाष्य से स्पष्ट खण्डन हो जाता है।

वे इस मंत्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं—

"(**मया**) मैंने (**वरदा**) इष्टफल देनेवाली (**वेदमाता**) वेदरूपी माता का (**स्तुता**) स्तवन अर्थात् अध्ययन कर लिया है। (**प्रचोदयन्ताम्**) हे गुरुजनो! इसका मुझे और प्रवचन कीजिए। (**द्विजानाम् पावमानी**) द्विजन्मों को यह वेद-माता पवित्र करती है। (**आयुः**) स्वस्थ और दीर्घ आयु, (**प्राणम्**) प्राणविद्या, (**प्रजाम्**) उत्तम सन्तानों, (**पशुम्**) पशुपालन, (**कीर्तिम्**) पुण्य और यश, (**द्रविणम्**) धनोपार्जनविद्या, (**ब्रह्मवर्चसम्**) ब्रह्म के तेजःस्वरूप का परिज्ञान, इनका सदुपदेश (**मह्यं दत्वा**) मुझे देकर, हे गुरुजनो! (**ब्रह्मलोकम्**) आलोकमय ब्रह्म तक (**व्रजत** = व्राजयात) मुझे पहुँचाइए।

[वेदमाता = मन्त्र का देवता गायत्री है, ऐसा अथर्ववेद-सर्वानुक्रमणीकार को अभिमत है। यदि गायत्री का अभिप्राय "प्रसिद्ध गायत्री मंत्र" है तो यह "स्तुता मया वरदा" मंत्र द्वारा अनुक्त है। "या तेन प्रोच्यते सा देवता" के अनुसार "देवता" मंत्रप्रोक्त होना चाहिए। गायत्री तो स्वयं मंत्र है। यथा—**"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्"**। इस गायत्री मंत्र के सम्बन्ध में कोई वर्णन "स्तुता मया वरदा" इस मंत्र में नहीं है तथा **समग्र अथर्ववेद में कहीं भी प्रसिद्ध गायत्री मंत्र पठित भी नहीं है**। प्रकरणानुसार भी "वेदमाता" का अर्थ वेदरूपी माता ही उपयुक्त प्रतीत होता है। सूक्त ६८ में "वेदमथ" द्वारा वेद का वर्णन है। और सूक्त ७२ में भी **"कोशादुदभराम वेदम्"** द्वारा वेद का ही वर्णन है। वेदवाणी मातृसदृश उपकारिणी है। इस वेदमाता का ही स्तवन अर्थात् अध्ययन अथर्ववेद के १ से १९ काण्डों तक अभिप्रेत प्रतीत होता है, जिसका निर्देश "स्तुता मया वरदा वेदमाता" द्वारा किया गया है। अथवा—"गायत्री = गायताः स्तोतॄन् त्रायते" इति गायत्री = वेदवाणी (= वेदः)। इस प्रकार "स्तुता" पद द्वारा

गायत्री अर्थात् वेदवाणी अभिप्रेत हो सकती है।"[1]

'गायत्री मंत्र' के विभिन्न विद्वानों द्वारा किये भाष्य—पौराणिकों के भाष्य—
श्री सायणाचार्य का भाष्य, ऋ० ३।६२।१० :

"यः सविता देवः नः अस्माकं धियः कर्माणि धर्मादिविषया वा बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य देवस्य सवितुः सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य वरेण्यं सर्वैः उपास्यतया ज्ञेयतया च संभजनीयं भर्गः अविद्या तत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि वयं ध्यायामः। यद्वा। तत् इति भर्गो विशेषणम्। सवितुः देवस्य तत्तादृशं भर्गो धीमहि। किं तदित्यपेक्षायामाह। यः इति लिंगव्यत्ययः। यद्भर्गो धियः प्रचोदयात्। तत् ध्यायेमेति समन्वयः। यद्वा। यः सविता सूर्यो धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुः देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत्सर्वैः, दृश्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः सम्भजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजोमण्डलं धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम। यद्वा। भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते। यः सविता देवो धियः प्रचोदयति तस्य प्रसादाद्भर्गोऽन्नादिलक्षणं फलं धीमहि धारयामः। तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः। भर्गः शब्दस्यान्नपरत्वे धीशब्दस्य कर्मपरत्वे चाथर्वणं—'वेदांश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः। कर्माणि धियस्तदु ते प्रब्रवीमि प्रचोदयंत्सविता याभिरेति (गो० ब्रा० १.३२) इति। भर्गः। 'भ्रस्ज पाके'। असुन्। 'भ्रस्जो रोपधयो रमन्यतरस्याम्' (पा० सू० ६-४-४७) इति रोपधयोर्लोपो रमागमः। न्यङ्क्वादिपाठात् कुत्वम्। धीमहि। ध्यायतेर्लिङि 'बहुलं छन्दसि' इति संप्रसारणम्। व्यत्ययेनात्मनेपदम्। यद्वा। 'धीङ् आधारे'। लिङि 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक्। प्रचोदयात्। चोदयतेर्लेट्याडागमः। यद्वृत्तयोगादनिघातः। आगमस्यानुदात्तत्वे णिचः स्वरः।"[2]

अर्थात्—"जो सविता देव हमारे कर्मों, धर्मादिविषयक बुद्धियों को प्रेरित

---

१. अथर्ववेद-भाष्यम् [काण्ड १८, १९ की आध्यात्मिक व्याख्या], पृष्ठ ३८०-३८१ [संवत् २०३४ वि०, सन् १९७७ ई० में रा० ब० चौ० नारायणसिंह प्रतापसिंह धर्मार्थ ट्रस्ट, ५७ एल, माडल टाउन, करनाल द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

२. "ऋग्वेद संहिता २-५ मण्डलात्मकः, द्वितीयो भाग; पृष्ठ ४८८-४८९ [सन् १९३६ में वैदिक संशोधनमण्डल, तिलक मेमोरियल, पूना-२ द्वारा प्रकाशित]

करता है उस देव सर्वान्तर्यामिरूप से प्रेरणा देनेवाले और विश्व के स्रष्टा परमेश्वर, सब लोगों से उपासनीय और ज्ञेय और अविद्यादि कार्यों के नाशक, स्वयं ज्योतिरूप परब्रह्मरूप तेज का हम ध्यान करें।

अथवा—'तत्' शब्द भर्ग का विशेषण है। सविता देव के सदृश्य उस भर्ग का ध्यान करता हूँ। वह क्या है—वह भर्ग बुद्धि को प्रेरणा देता है, उसका ध्यान करते हैं। यह समन्वय है।

अथवा—जो सविता सूर्य बुद्धि को कर्म के लिए प्रेरणा देता है उस सबका प्रसव करनेवाले सवितादेव के, प्रकाशमान सूर्य के, सबके दृश्यमान होने के कारण सबके द्वारा उपासनीय, भजन करने योग्य, पापों को नाश करनेवाले, तेजोमण्डल को ध्येय समझकर मन से धारण करते हैं।"

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी 'वेदान्तशास्त्री' व पण्डित गौरीनाथ झा 'व्याकरण-तीर्थ' और **साहित्याचार्य पं० महेन्द्रमिश्र 'मग'** कृत अनुवाद—"जो सविता हम लोगों की बुद्धि को प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियों में प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वर के सम्भजनीय परब्रह्मात्मक तेज का हम लोग ध्यान करते हैं।"[1]

श्री स्कन्दकृत अर्थ—"हे सुव्रत द्विजलोगो! अन्तर्यामिरूप हम सबके चित्तों को जो प्रेरित करता है, वह प्रकाशमान, सब जन्तुओं में प्रत्यक्षरूप से स्थित, सवितारूप परमेश्वर, सम्पूर्ण जन्तुओं द्वारा भजनीय, तेजस्वी, चैतन्य-रूप, सर्वज्ञ, और संसार का उत्पादक है।"[2]

पं० भट्टोजि दीक्षितकृत अर्थ—"तदिति, 'षू', प्रेरणे। सूयति प्रेरयतीति। सविता सूर्यः तत्सम्बन्धिसूर्यमण्डलावच्छिन्नमिति यावत्। दीप्यतीति देवः। परमात्मा तस्य वरेण्यं सर्वैर्भजनीयम् वृञ् एण्यः। अविद्याकामकर्मादिभर्जनाद्भर्गः

---

१. "ऋग्वेद संहिता (सरल-हिन्दी-टीका-सहित), तृतीय अष्टक, पृष्ठ १०८ [संवत् १९९० वि० में 'वैदिक पुस्तकमाला' कृष्णगढ़, सुलतानगंज द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण] इनका अनुवाद श्री सायणभाष्यानुसार है।

२. पं० श्री विश्वनाथ शास्त्री, वेद-व्याकरणतीर्थ कृत 'यज्ञोपवीत मीमांसा' पृष्ठ १०४ [संवत् १९९५ वि० सन् १९३८ ई० में वैदिक साहित्य पुस्तकालय, २३ अर्फनगंज रोड, सिदिरपुर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

स्वरूपात्मकं ज्योतिः। धीमहि तदेवाहामस्मि । तद्दासोऽहमिति वा ध्यायेम यः देवः। नः अस्माकं धियः, बुद्धिः, प्रचोदयात् प्रेरयतीत्यर्थः बाहुलकाल्लाऽर्थेलेट। लेटोऽडाटौ इत्याडागमः। भूः भुवः स्वः ऐते त्रयो लोकाऽपि ओ३म् ब्रह्म वेति।"

अर्थात्—'सू' धातु का अर्थ प्रेरणा है। सूर्य को प्रेरणा करने के कारण ही सविता कहा जाता है अर्थात् सूर्यमण्डल में व्यापक तेज ही जो कि प्रेरणा देता है; सविता है। प्रकाश करने के कारण उसे देव कहते हैं। वह सविता देव है, परमात्मा है। उसका वरण करना अर्थात् भजन करना, चिन्तन करना, वृञ् धातु में एण्य प्रत्यय लगाने से वरेण्य शब्द बनता है। अविद्यारूपी काम, कर्मादि का भर्जन या नाश करने के कारण उसे 'भर्ग' कहते हैं, वह स्वरूपात्मक ज्योति है। मैं वह देव हूँ या उसका दास हूँ, ऐसा ध्यान करता हूँ। वह सबों की बुद्धि को प्रेरणा करता है। बाहुलकाल्लाऽर्थे लेट लेटोऽडाटौ इस सूत्र से आट लाया गया है। भूः भुवः स्वः—ये तीनों लोक हैं और 'ओ३म्' ब्रह्म है।[1]

आचार्य रावण का भाष्य—"तत् तस्य भर्गस्तेजः धीमहि ध्यायेम चिन्तयाम अत्र यद्यपि तदिति पदं भर्गो विशेषणं नास्ति तथापि तच्छब्दप्रयोगादेव यच्छब्द प्रयोगोपलभ्यते तस्य कस्य 'सवितः' सर्वभावानां प्रसवितुः पुनः किं भूतस्य 'देवस्य' दीप्ति क्रीडादियुक्तस्य तं कं यो भर्गो नो ऽस्माकं धियो बुद्धिः प्रचोदयात्। तदिहि भर्गशब्देन बहुविधमाहात्म्यमुक्तम्। सवितृमण्डलगनादित्यदेवता स्वपुरुष उच्यते अत्र यद्यपि सवितुर्भर्गः इति। सवितृभर्गयोर्भिन्नता गायत्रीमन्त्रे प्रतीयते तथापि परमार्थचिन्तायां सवितृभर्गयोर्भेदो न विद्यते एवं स एव सविता स एव भर्गः सवितृभर्गयोः अद्वैतमेव तथा च राहो शिर इतिवत् षष्ठत्वभेदसाधिका पुनरपि किंभूतं भर्गः वरेण्यं प्रवणीयं प्रार्थनीयम्। जन्म-मृत्युदुःखनाशाय ध्यानेन उपासनीयमित्यर्थः। एवं गायत्र्यास्तस्य च माहात्म्यमुपवर्ण्य पुनस्तथैव महा प्रभास्वं महाव्याहृतिभिर्विशेषणीभूतासिरभिधीयते तद्यथा किं भूतं भर्गः भूरादिव्याप्य तिष्ठन्तमिति शेषः तथा च भूरादित्रैलोक्यप्रकाशम्। भूर्भूमिलोकः भुवः भुवर्लोकः अन्तरिक्ष, स्वस्वर्लोक एवमुपरि क्रमेणावस्थितान् लोकानभिव्याप्यातिष्ठन्नसौ भर्ग एतांस्त्रींल्लोकानेव प्रदीपवत् प्रकाशयतीत्यर्थः।"

---

१. 'गायत्री का मंत्रार्थ' पृष्ठ १२७-१२८ [संवत् २०१४ वि० में 'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा से प्रकाशित, तृतीय बार]

अर्थात्—"तत् अर्थात् इनके भर्ग अर्थात् तेज का ध्यान, चिन्तन करते हैं। यहाँ पर यद्यपि 'तत्' शब्द का विशेषण नहीं है तथापि 'तत्' शब्द के प्रयोग से यत् शब्द का प्रयोग उपलक्षित होता है। उनके-किनके ? (सवितुः) समस्त भावों के उत्पन्न-कारक का। पुनः वह कैसा है ? (देवस्य) प्रकाश तथा क्रीड़ादि से युक्त के तेज का ध्यान करते हैं। वह तेज कौन है ? जो तेज हमारी बुद्धि को प्रेरणा करता है।

यहाँ पर उस भर्ग शब्द से अनेक प्रकार का माहात्म्य कहा है। सवितृमण्डल के अन्तर्गत जो आदित्य देवता है वह सर्वव्यापी पुरुष कहा जाता है। गायत्री मंत्र में यद्यपि 'सवितुर्भगः' यहाँ पर सविता और भर्ग में भिन्नता प्रतीत होती है तथापि परमार्थ चिन्तन में सविता और भर्ग में भेद नहीं है किन्तु वही सविता है, वही भर्ग है। इस प्रकार अद्वैत है। और राहु का शिर अर्थात् राहु ही शिर है। इस प्रकार 'सवितुर्भर्गः' में वही स्थिति हो गई है। फिर वह कैसा है ? (वरेण्यं) प्रार्थना करने योग्य, जन्म-मृत्यु रूपी दुःख के नाश करने के लिए ध्यान द्वारा उपासनीय है। इस प्रकार गायत्री का माहात्म्य वर्णन कर पुनः भर्ग के माहात्म्य को महाव्याहृति द्वारा विस्तारपूर्वक कहते हैं। वह भर्ग कैसा है ? जो पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त है और तीनों लोकों को प्रकाशित करता है। 'भूः' पृथिवीलोक है। 'भुवः' भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) है। 'स्वः' स्वर्गलोक है। इस प्रकार क्रमशः ऊपर स्थिति लोकों में व्याप्त होकर वर्तमान वह भर्गः इन तीन लोकों को इस प्रकार दीपक के सदृश प्रकाशित करता है।"[1]

श्री आद्यशंकराचार्य जी महाराज का भाष्य—तत् शुद्धगायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका। धियो यो नः प्रचोदयादिति। नोऽस्माकं, धियो बुद्धियः, प्रचोदयाद् प्रेरयेदिति। सर्वबुद्धिसंज्ञातःकरणप्रकाशकसर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते। तस्य प्रचोदयात् शब्दनिर्दिष्टस्यात्मनःस्वरूपभूतं परंब्रह्म तत्सवितुरितित्यादिपदैर्निर्दिश्यते।

तत्र ओं तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणास्त्रिविधिः स्मृतः इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परं ब्रह्मोच्यते। सवितुरिति सृष्टिस्थितिप्रलयलक्षणकस्य सर्वप्रपंचकस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते, वरेण्यमिति। सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम्। भर्ग इत्यविद्यादिदोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम्। देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम्। सवितुर्देवस्येत्यत्रषष्ठ्यर्थो राहो शिरोवदीप-

---

१. वही, पृष्ठ १०२ से १०४ तक

चारिकबुद्धयादिसर्वदृश्यसाक्षिलक्षणं यन्मे स्वरूपं तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्द-निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मेत्येवं धीमहि ध्यायेम। एवं सति सह ब्रह्मणा स्वविवर्तजडप्रपंचरज्जुसर्पन्यायेनापवादः।

समानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोयमिति न्यायाने सर्वसाक्षिप्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्येकरूपत्वं भवतीति सर्वात्मकब्रह्मबोधकोऽयं गायत्रीमंत्रः सम्पद्यते, त्रिमहाव्याहृतीनामयमर्थः। भूरिति सन्मात्रमुच्यते। भुवः इति सर्वं भासयति प्रकाशयति इति व्युत्पत्या चिद्रूपमुच्यते। स्व सुव्रियते इति व्युत्पत्या स्वरिति सुष्टु सर्वैव्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यते इति।"

अर्थात्—"शुद्ध गायत्री जीवात्मा और ब्रह्म की एकता का सूचक है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' अर्थात् हमारी बुद्धि को प्रेरणा देता है तथा जो अन्तःकरण की प्रकाशिका व सर्वसाक्षी है उसे प्रत्यगात्मा कहा जाता है।

उस प्रचोदयात् शब्द से आत्म स्वरूपभूत परब्रह्म का तत् सवितुः आदि पदों से कथन किया है। यहाँ ओं तत्सत् इस पद से ब्रह्म के तीन प्रकारों का वर्णन है। तत् शब्द स्वतःसिद्ध सब भूतों में स्थित परब्रह्म के लिए कहा जाता है। सविता, सृष्टि, स्थिति, प्रलय लक्षणवाले सब प्रपंच के, समस्त द्वैत भ्रम के अधिष्ठान हैं। वरेण्यं सर्ववरणीयं; निरतिशय एवं आनन्दरूप है। 'भर्ग' अविद्यारूपी दोष को नष्ट करनेवाला ज्ञानरूप है। 'देवस्य' सबका प्रकाशक, अखण्ड आत्मा एवं रस-वाला देव है। 'सवितुर्देवस्य' यहाँ षष्ठी है। सम्बन्धकारक है, राहोशिरो की तरह औपचारिक है। बुद्धि से सब पदार्थों का साक्षीरूप जो मेरा स्वरूप है वह सबका अधिष्ठान है। उस परमानन्द, सब अनर्थरहित, स्वयंप्रकाश चैतन्यरूप ब्रह्म का ध्यान करते हैं। इस तरह ब्रह्म अपने ही विवर्त जड़जगत् रज्जु में सर्प की तरह अपवाद है।

समान अधिकरण होने से एकरूपता है। इस तरह सबका साक्षी जीवात्मा ब्रह्म के साथ तादात्म्य होने के कारण एकत्व है। यह गायत्री मंत्र सर्वात्मक ब्रह्म का बोध करानेवाला है। तीन महाव्याहृतियों का अर्थ यों है—भूः का अर्थ सत् है, भुवः सबका प्रकाशक इस व्युत्पत्ति से चिद्रूप कहलाता है। स्वः सुव्रियते इस व्युत्पत्ति से सबसे प्रथित सुखस्वरूप है।"[1]

1. वही, पृष्ठ १२५ से १२७ तक।

श्री विद्यारण्य स्वामी का भाष्य—"तदिति वाङ्मनोगम्यं ध्येयं यत्सूर्यमण्डले। सवितुः सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्। वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधारमिदञ्जगत्। भर्गः स्वसाक्षात्कारेणाविद्या तत्कार्यदाहकम्। देवस्य द्योतमानस्य ह्यानन्दात्क्रीडतोऽपि वा। धीमह्यहं स एवेति तेनैवाभेदसिद्धये। धियोऽन्तःकरणवृत्तीश्च प्रत्यक्प्रवणचारिणी। य इत्यलिङ्धर्मो यत्सत्यज्ञानादिलक्षणम्। नोऽस्माकं बहुधा भिन्न-भिन्न भवेदृशां तथा। प्रचोदयात्प्रेरयतु प्रार्थनेयं विचार्यने।"

अर्थात्—"समस्त विश्व की उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले सवितादेव के मण्डल में जो वाणी मन से भी अगम्य 'तत्' है, उसका ध्यान करना चाहिए। जो इस जगत् का आधार तथा सबका आश्रय लेने योग्य है वह भर्ग अपने साक्षात्कार से अविद्या और तज्जनित कार्यों का नाशक है। आनन्दस्वरूप से प्रकाशमान तथा क्रीड़ा करनेवाले सवितादेव का वह सविता ही है। ऐसा जानकर अभेद सिद्धि के लिए ध्यान करते हैं। धियः (बुद्धि) अन्तःकरण की वृत्ति और जीवात्मा के समक्ष चलनेवाली है। यह लिङ् व्यत्यय है जो सत्य तथा ज्ञानस्वरूप है। अनेक प्रकार के अभ्यास से अनेक भेद देखनेवाले लोगों को प्रेरणा करे, यह प्रार्थना है।"[1]

पं० श्री वरदराज का भाष्य—"तच्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दोऽध्याहारार्थः। सवितुः जगतां प्रसवितुः सविता वै प्रसवानामीशे। उत्तमेर्चिषे प्रसवस्य त्वमेकः इत्यादि श्रुतेः। वरेण्यम् वृञ् सम्प्रक्तौ एण्यप्रत्ययः सर्वेषां सम्भजनीयम्। भर्गस्तेजः भञ्जनाद्भर्गः प्रकाशप्रदानेन जगतो बाह्याभ्यन्तरं तमोभञ्जकत्वाद्भर्जनाद्वा कालात्मकतया सकलकर्मफलपाकहेतुत्वाद् भरणाद्वा वृष्टिप्रदानेन भूतानां भरण-हेतुत्वात्। देवस्य द्योतमानस्य धीमहि चिन्तयामः। 'ध्यै' चिन्तयाम्, देवस्य सवितुर्वरेण्यं। यद्भर्गस्तद्ध्यायामः। आदित्यमण्डलान्तर्वर्तिनतेजोमयं पुरुषमनु-चिन्तयामः। य एषोन्तारादित्ये हिरण्ययः पुरुषः। अथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुष इत्यादि श्रुतेः धियो यो नः सविता अस्माकं धियदानोपादानविषयाणि ज्ञानानि प्रचोदयात् प्रचोदयति प्रवर्तयति तत्सवितुस्तद्भर्गश्चिन्तयाम इति।"

अर्थात्—" 'तत्' शब्द के सुनने से 'यत्' शब्दवाची अर्थ लिया गया है। 'सविता' का अर्थ है जगत् को प्रसव करनेवाला सविता सृष्टि का, प्रसव होनेवालों

1. वही, पृष्ठ १३१-१३२।

का ईश्वर है। प्रसव करनेवालों अर्थात् सृष्टि-रचयिताओं में से तुम एक उत्तम हो यह श्रुति है। एण्य प्रत्यय लगाकर 'वृञ्' धातु से वरेण्य बनता है यह भक्ति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है इसलिए वरेण्यं का अर्थ होता है चिन्तनीय, भजनीय या चिन्तन या भजन करने के योग्य है। 'भर्ग' का अर्थ है तेज, भंजन करने के कारण इसे 'भर्ग' कहते हैं। यह प्रकाश देकर जगत् के बाहर और भीतर के अन्धकारतम का नाश करता है, भर्जन करता है। अथवा कालरूप होने के कारण सब कर्मफलों को परिपक्व करने के कारण या भस्म करने के कारण भर्ग है, वृष्टि द्वारा भूतों का भरण इसी से होता है। 'देवस्य' का अर्थ 'प्रकाशमान' है और धीमहि का अर्थ 'चिन्तन करता हूँ' है। 'ध्यैं' चिन्ता करना, चिन्तन करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। सविता देव का जो वरणीय भर्ग है, उसका ध्यान करता हूँ। आदित्यमण्डल के भीतर जो तेजोमय पुरुष है उसका चिन्तन करता हूँ। जो आदित्य के अन्तर में हिरण्यय पुरुष है और जो इस मण्डल में तेजोरूप पुरुष है इत्यादि श्रुतिवाक्य इसी अर्थ में कहे गये हैं। धियो यो नः जो हमारी बुद्धि को दानोपादनविषय ज्ञान आदि की ओर प्रेरित करता है उस सविता देव के भर्ग का चिन्तन करता हूँ।"[1]

श्री महीधराचार्यकृत भाष्य—"विश्वामित्रदृष्टा सावित्री गायत्री जपे वि०। तदिति षष्ठ्यर्थे तस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानानन्दस्वभावस्य हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा आदित्यान्तरपुरुषस्य वा ब्रह्मणो वरेण्यं वरणीयं सर्वैः प्रार्थनीयं भार्गः सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भर्जनसमर्थं तेजः सत्यज्ञानानन्दादिवेदांतप्रतिपाद्यं वयं धीमहि ध्यायामः। छान्दसं सम्प्रसारणम्। यद्वा मण्डलं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गः शब्दवाच्यम्। भर्गो वीर्य्यं वा। वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्य्यं वै भर्ग इति श्रुतेः (५, ४, ५, १)। तस्य कस्य। यः सविता नो अऽस्माकं धियः बुद्धीः कर्माणि वा प्रचोदयात्प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति सत्कर्मानुष्ठानाय। यद्वा वाक्यभेदेन योजना। सवितुर्देवस्य तत् वरेण्यं भर्गो ध्यायामः। यश्च नो बुद्धीः प्रेरयति तञ्च ध्यायामः। स च सवितैव। लिङ्गव्यत्ययेन योजना। सवितुर्देवस्य तत् भर्गो धीमहि। यो यत् भर्गो नो बुद्धीः प्रेरयति।"

[यजु० अ० ३ मंत्र ३५]

१. वही, पृष्ठ १२६ से १३१ तक।
२. अगले पृष्ठ पर देखें।

अर्थात्—"प्रकाशक, प्रेरक, अन्तर्यामी, विज्ञानानन्दस्वभावस्त्ररूप, हिरण्यगर्भ उपाधिवाले; सूर्यमण्डल में स्थित पुरुषस्वरूप ब्रह्मदेव का वरण करने योग्य अथवा प्रार्थनीय, सब संसार के पापों के नाशक, वेदान्तों से प्रतिपादित सत्य तथा अविच्छिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप तेज का हम ध्यान करते हैं। उस किस देव का ध्यान करते हैं? जो सविता देव हमारी बुद्धि को अथवा कर्मों को शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। वाक्य के भेद से योजना करते हैं। सविता देव के प्रार्थनीय तेज का जो भर्ग हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों में प्रवृत्त करता है, उस भर्ग का हम ध्यान करते हैं वह सविता ही है। सविता देव के उस तेज का ध्यान करते हैं जो तेज हमारी बुद्धि को शुभकर्मों में प्रेरणा करता है।"

श्री उव्वटाचार्यकृत भाष्य—"तत्सवितुः"। सावित्री गायत्री। तदिति षष्ठ्या विपरिणम्यते। तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवदातुः। आदित्यान्तरपुरुषस्य। "देवस्य" हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा विज्ञानानन्दस्वभावस्य वा ब्रह्मणः। "वरेण्यम्"। वरणीयम् "भर्गः"। भर्गशब्दो वीर्यवचनः। "वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद् भर्गोऽपचक्राम वीर्यं वै भर्ग" इति श्रुतिः। तेन हि पापं भृज्जति दहति। भृजी भर्जने। अथवा भर्गस्तेजोवचनः। यद्वा मंडलं पुरुषो रश्मय इत्येतत् त्रितयमभिप्रेयते। 'देवस्य' दानादिगुणयुक्तस्य। 'धीमहि'। ध्यै चिन्तायाम्। अस्य छान्दसं सम्प्रसारणम्। ध्यायामः। चिन्तयामः। निदिध्यासं तद्विषयं कुर्म इति यावत्। "धियो यो नः"। धीशब्दो बुद्धिवचनः कर्मवचनो वा वाग्वचनश्च। बुद्धीः कर्माणि वा वाचो वा। यः सविता नोऽस्माकम्। "प्रचोदयात्"। चुद संचोदने। प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति तस्य सवितुः सम्बन्धिवीर्यं तेजो वा ध्यायाम इति सम्बन्धः। वाक्यभेदेन वा योजना। तत्सवितुर्वरणीयं वीर्यं तेजो वा देवस्य ध्यायामः। यश्च बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयत्यस्माकं तं च ध्यायामः स च सवितैव भवति। लिङ्गव्यत्ययेन वा योजना। तत्सवितुर्वरणीयं भर्गो देवस्य ध्यायामः धियो यद् भर्गः अस्माकं प्रेरयति।"[1]

[यजु० ३।३५]

"शुक्लयजुर्वेदसंहिता मंत्रभाष्य वेददीपभाष्यसहित, प्रथमखण्डम्, पृष्ठ १३२-१३३ [सन् १९१२ ई० में चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी द्वारा प्रकाशित]

१. वही, पृष्ठ १३१-१३२।

अर्थात्—'तत्' शब्द षष्ठी का है। उस सविता का जो सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माणकर्त्ता है, और जिसका आदित्य के अन्तरपुरुष हिरण्यगर्भ से अविच्छिन्न विज्ञानानन्द स्वभाववाले ब्रह्म का वरेण्य वीर्यवानरूप भर्ग है। भर्ग शब्द वीर्य वाचक है। भर्ग का जन्म वरुण से हुआ है अथवा अभिषेचन से हुआ है। श्रुति में भी भर्ग को वीर्य कहा गया है। उससे पाप नष्ट होते या जलते हैं। भृजी धातु भर्जन अर्थ-वाची होने से भर्ग तेज के अर्थ का बोध कराता है। अथवा भर्ग का अर्थ मण्डल-पुरुष और किरण भी होता है। दानादि गुणयुक्त होने से उसे 'देव' कहते हैं। 'ध्यै' धातु का अर्थ चिन्तन करना है। वेद में इसका अर्थ सम्प्रसारण है। इसलिए इसका अर्थ हुआ 'ध्यान करते हैं, चिन्तन करते हैं, निदिध्यासन करते हैं।' धियो यो नः में धी शब्द बुद्धि, कर्म अथवा वाक्वाचक है इसलिए जो सविता हम सबको अर्थात् हमारी बुद्धि, क्रिया, वाणी को प्रेरणा देता है। जो सवितादेव हम सबों की बुद्धि को कर्म और धर्मादि विषयों की ओर प्रचोदयात् = प्रेरणा देता है। चुद धातु का अर्थ प्रेरणा देना है। सविता सम्बन्धी वीर्य, तेज का ध्यान करता हूँ। उस सविता के वरणीय वीर्य, तेज का ध्यान करते हैं जो बुद्धि को प्रेरणा देता है। जो हमको प्रेरणा करता है और जिसका हम ध्यान करते हैं वह तो सविता ही है। लिंग व्यत्यय करने पर उस सविता देव के वरणीय भर्ग का ध्यान करते हैं जो भर्ग हमारी बुद्धि को प्रेरणा प्रदान करता है।"

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादमिश्र का 'मिश्रभाष्य'—"(तत्) उस (देवस्य) प्रकाशात्मक (सवितुः) प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञानानन्दस्वभाव हिरण्य-गर्भोपाध्यपच्छिन्न अथवा आदित्य के अन्तरस्थित पुरुष "यो सावादित्ये पुरुषः" [यजु अ० ४०] वा ब्रह्म के (वरणीयम्) सबसे प्रार्थना किये हुए (भर्गः) सम्पूर्ण पाप के वा सब संसार के आवागमन दूर करने में समर्थ सत्य ज्ञान आनन्दादि तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं (यः) जो सविता देव (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को सत्कर्म के अनुष्ठान के लिए (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है [ऋ० ३।४।१०]।

अथवा—सविता देव के उस वरणीय तेज का हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करता है वह सविता ही है।

मण्डलपुरुष की किरण भी भर्ग है वीर्य को भी भर्ग कहते हैं।

प्रमाण—"वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोपचक्राम वीर्यं वै भर्गः" इति

श्रुतेः। [श० ५, ४, ५, १]"[1] [यजु० ३।३५]

बंगाल के पं० तारानाथ 'तर्कवाचस्पति' का अर्थ—सवितुर्देवस्य भर्गाख्यं परब्रह्मस्वरूपं तेजः। चिन्तनीयं मम हृत्पद्मस्थितेनैव भर्गाख्येन तेजसा प्रेर्यमाणस्तदेव भूर्लोकान्तरिक्षलोकस्वर्गलोकादिब्रह्माण्डोदरवृत्तिसकलचराचरत्रैलोक्यस्वरूपं मम हृदये बाह्ये च सूर्यमण्डले वर्तमानतेजसा एकीभूतं परब्रह्मस्वरूपज्योतिरहमिति चिन्तयञ्जपं कुर्यादित।"

सविता देव का भर्ग नाम का परब्रह्मस्वरूपी प्रार्थनीय तेज हमारे हृदय में स्थित भर्ग के तेज से प्रेरित है। वही पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष, स्वर्गलोक आदि ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत विद्यमान सकल चराचर त्रैलोक्यरूपी हमारे हृदय में तथा बाहर सूर्य-मण्डल में वर्तमान तेज से एकरूप परब्रह्मरूप ज्योति है वह मैं हूँ ऐसा चिन्तन करता हुआ जप करे।"[2]

परमहंस-परिव्राजकाचार्य स्वामी श्रीमद्भगवदाचार्य (श्री वैष्णव)—'सवितुः' सर्वोत्पादकस्य। देवस्य दिव्यगुणविशिष्टस्य। परमेश्वरस्येत्यर्थः। तद्वरेण्यं वरणीयम्। भर्गस्तेजः धीमहि ध्यायामो ध्यात्वा स्वस्मिन्स्थापयाम इति यावत्। यो यत्। लिङ्गविपर्ययः। नोस्माकमुपासकानाम्। धियो मतीः। कर्माणि वा। धीरिति कर्मनाम (निघ० २।१।२१)। धृञ् धारणे। धारयन्ति पोषयन्ति कर्तारं फलदानेन; प्रचोदयात्प्रेरयेत् सन्मार्गे इति भावः। अथवा सविता सूर्यः। सोपि देव एव दिव्यगुणविशिष्ट एव। जलवर्षण-वस्तुदोष-निवारण-प्रकाशप्रदान-वलप्रदान-स्वास्थ्यप्रदानादयः सूर्यगुणाः। भूम्याकर्षणं विषाक्तजन्तूनां स्वकिरणैर्विनाशनं गृहादिशोधनमपि सूर्यगुणाः। अतएव दानाद्वा द्योतनाद्वा दीपनाद्वा देवः सूर्यः। स एव सर्वाञ्जन्तून् स्वस्वकर्मणि निरतान् करोति। तस्मिन्नुदित एव लौकिकानां सर्वे एव व्यवहाराः प्रचलन्तीति तत्स्तुतिः ॥३५॥

भावार्थ—सर्वोत्पादक दिव्यगुण विशिष्ट परमेश्वर के उस तेज का हम ध्यान करते हैं जो हम उपासकों की बुद्धि को अथवा कर्म को सन्मार्ग में प्रेरित करता

---

१. "श्रीशुक्लयजुर्वेद संहिता, मिश्रभाष्यसहित, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १००-१०१ [संवत् १९५९ वि० में श्री वेंकटेश्वर (स्टीम्) मुद्रणालय बम्बई द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]।

२. "गायत्री के मंत्रार्थ" पृष्ठ १३२-१३३।

है।"[1]

पुनः सामवेद १४६२ पर भाष्यः—"तत्सवितुरिति। विश्वामित्रो गाथिन ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। सवितुर्जगदुत्पादकस्य परमैश्वर्यस्य वा देवस्य दिव्यगुणविशिष्टस्य परमप्रकाशस्य वा। परमेश्वरस्य 'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।' इति यास्कः (नि० ७।१५)। तद्भर्गः सर्वदोष-दाहनिपुणं तेजः। तच्च ब्रह्मात्मकमेव। धीमहि ध्यायेम वयम्। षष्ठी विभक्ति-रिहाभेदबोधिका। 'आम्रस्य वृक्ष' 'राहोः शिर' इतिवत्। सवितृभर्गसौरैक्यादेव य इति पुल्लिंगनिर्देशः। यः सवितादेवः। अथवा छान्दसोलिंगव्यत्ययः। यद् भर्ग इति। नोस्माकं धियः सत्कर्माणि। धीरिति कर्मनाम (निघ० २।१।२१)। अथवा सत्कर्मस्वित्यध्याहार्यम्। यः सविता यद्भर्गो वा सत्कर्मसु अस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत्। कीदृशं भर्गः? वरेण्यं वरणीयं स्तुत्यं वा। वरेण्यमित्यत्रापि लिंगव्यत्ययः। वरेण्यो वरणीयः स्तुत्या वा सविता ॥१।१०॥

समस्त जगत् के उत्पादक दिव्यगुणविशिष्ट परम प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के उस सर्वदोषनिवर्तक तेज का हम ध्यान करें जो हमारी बुद्धि को सदा सत्कर्म में प्रेरणा करे।"[2]

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य—"उन सर्वप्रेरक सविता देव का हम ध्यान करते हैं। वह सबके द्वारा वरणीय, सभी पापों के नाशक और सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि तेज के पुञ्ज हैं। वे हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करते

---

१. 'शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता, शुक्ल यजुः संस्कारभाष्य प्रथम (पञ्चाध्यायात्मिका) पृष्ठ १३१ [संवत् २०१६ वि० में श्री मनोहर विद्यालंकार, कन्हैयालाल देवी सहाय, चावड़ी बाजार, दिल्ली द्वारा प्रकाशित] तुलना करो यजु० ३६।३ पर आपका ही भाष्य, यजुर्वेद संस्कार भाष्यम्, पृष्ठ २ [शुक्ल यजुर्वेद संस्कार भाष्येन सहितस्य, ३९-४० अध्यायाः, संवत् २०२२ वि० में भाष्य-कार द्वारा राजनगर सोसाइटी, अहमदाबाद-७ द्वारा प्रकाशित]।

२. "श्रीसामवेदसंहिता (उत्तरार्चिकः) सामसंस्कारभाष्य, पृष्ठ ५४४-५४५ [सन् १९५७ ई० में श्री रामानन्द साहित्य मन्दिर, अट्टा, अलवर (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित]

हैं।"[1] [यजु० ३।३५]

"उन सर्वप्रेरक सविता देव के सबसे वरणीय सभी पापों के दूर करने में समर्थ उस सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि तेज का हम ध्यान करते हैं। वे सविता देव हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों के करने की प्रेरणा दे।"[2] [यजु० २२।९]

"उन सर्वप्रेरक सविता देव के तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्य कर्मों के निमित्त प्रेरित करते हैं।"[3] [यजु० ३०।२]

"बुद्धियों को प्रेरित करनेवाले जो सविता देव ज्योतिर्मान् परमेश्वर सत्य-स्वरूप होने से उपासना योग्य हैं, उनका हम ध्यान करते हैं।"[4] [सामवेद १४६२]

वेदानुरागी आचार्य गोपालप्रसाद कौशिक—"हम लोग सूर्यदेव के प्रकाशमय अति श्रेष्ठ दुःखमूल को नष्ट करनेवाले उस दिव्य वरणीय तेज को धारण करें और जो अन्तर्यामी भी सर्वसुखदायक हैं वह हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों में प्रेरित करे।"[5] [यजु० ३।३५]

"उन सर्वप्रेरक सविता देव के, सबसे वरणीय, समस्त पाप दोषों को दूर करने में समर्थ उस सत्य, ज्ञान, आनन्द, आदि तेज का हम ध्यान करते हैं। वे सविता देव हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठकर्म करने की प्रेरणा दें।[6] [यजु० २२।९]

"सर्वप्रेरणादायक सविता देव के तेज का हम ध्यान करते हैं। जो हमारी मतियों को सत्य कर्म करने के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।[7] [यजु० ३०।२]

---

१. "यजुर्वेद (सरल हिन्दी भावार्थसहित), पृष्ठ ३८ [सन् १९६७ ई० में संस्कृति संस्थान, बरेली द्वारा प्रकाशित, संशोधित संस्करण]

२. वही, पृष्ठ ३८४

३. वही, पृष्ठ ४७७ तुलना करो पृष्ठ ५३० में यजु० ३६।३ का अर्थ।

४. "सामवेद [सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थसहित], पृष्ठ ३५९ [सन् १९७३ ई० में संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली द्वारा प्रकाशित, संशोधित संस्करण]

५. "यजुर्वेद (सरल हिन्दी भावार्थसहित), पृष्ठ ४५ [सन् १९६८ इ० में गंग बुक डिपो, घीयामण्डी, मथुरा द्वारा प्रकाशित, प्रथमबार]

६. वही, पृष्ठ ४४१

७. वही, पृष्ठ ५५० तुलना करो यजु० ३६/३ का अर्थ, पृष्ठ ६१६।

श्रोत्रिय–ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-दार्शनिक-सार्वभौम-विद्या-वारिधि-न्यायमार्तण्ड-वेदान्तवागीश श्री १०८ **स्वामी महेश्वरानन्द जी महाराज महामण्डलेश्वर**—"हम उस परमात्मदेव के वरणीय (चाहने योग्य) भर्ग (चैतन्य-ज्योति:) का ध्यान करते हैं। जो परमात्मा समस्त विश्व के प्रसव आदि के कर्त्ता हैं, इसी से उन्हें सविता कहते हैं, एवं जो सर्वत्र सदा स्वयं प्रकाशमान हैं। इसी से उन्हें देव कहते हैं, वह भर्ग हमारी बुद्धि वृत्तियों को धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्षरूप चतुर्विध-पुरुषार्थों की सिद्धि की ओर प्रेरित करे।"[1]

पं० श्रीकण्ठ शास्त्री, एम० ए०, व्याकरणाचार्य (आत्मज पं० माधवाचार्य शास्त्री)—"[सवितु: देवस्य] सबके प्रेरक व सबके उत्पादक प्रकाशस्वरूप या दिव्यगुण सम्पन्न प्रभु के [तत् वरेण्यं भर्ग:] उस सबसे प्रार्थनीय, पाप-तापों को भून डालने में समर्थ तेज का हम [धीमहि] ध्यान करते हैं [य: न: धिय: प्रचोदयात्] जो हम लोगों की बुद्धियों को उत्तम कर्मों की ओर विशेषतया प्रेरित करे।"[2]

पाश्चात्य विद्वान् श्री राल्फ टी० एच० ग्रीफिथ एम० ए० (Shree Ralph T. H. Griffith M. A., C. I. E.)—"May we attain that excellent glory of Savitar the God : so may he stimulate our prayers." [white Yajurveda. 3।35][3]

अर्थात्—"हम सविता देव के श्रेष्ठ यश को प्राप्त करें, इसलिए वे हमारी प्रार्थनाओं को प्रोत्साहित करें।"

ऋषि याज्ञवल्क्य जी—"अथ सावित्री। सविता वै देवानां प्रसविता तथो-हास्माऽएते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामा: समृध्यन्ते तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न: प्रचोदयादिति"—[शतपथ ब्राह्मण २-३-४-३९]

अर्थ—अब सावित्री का जाप है। सविता देवों का प्रेरक है। सविता की प्रेरणा से ही सब काम सफल होते हैं। इसलिए कहा, 'तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न: प्रचोदयात्' (यजु० ३।३५)।"

गायत्री पर वैदिक विद्वानों के भाष्य

महर्षि दयानन्द जी सरस्वतीकृत भाष्य—पदार्थ—(तत्) (सवितु:) सकल जगदुत्पादकस्य समग्रैश्वर्य्ययुक्तस्येश्वरस्य (वरेण्यम्) सर्वेभ्य उत्कृष्टं प्राप्तुं योग्यम् (भर्ग:) भृज्जन्ति पापानि दु:खमूलानि येन तत् (देवस्य) सकलैश्वर्यप्रदातु: प्रकाश-मानस्य सर्वप्रकाशकस्य सर्वत्र व्याप्तस्याऽन्तर्यामिण: (धीमहि) दधीमहि (धिय:) प्रज्ञा: (य:) (न:) अस्माकम् (प्रचोदयात्) सद्गुणकर्मस्वभावेषु प्रेरयतु।

भावार्थ—ये मनुष्या: सर्वसाक्षिणं पितृवद्वर्त्तमानं न्यायेशं दयालुं शुद्धं सनातनं सर्वात्मसाक्षिकं परमात्मानमेव स्तुत्वा प्रार्थयित्वोपासते तान् कृपानिधि: परम-गुरुर्दुष्टाचारान्निवर्त्य श्रेष्ठाचारे प्रवर्त्तयित्वा शुद्धान् सम्पाद्य पुरुषार्थयित्वा धर्मार्थ-काममोक्षान् प्रापयति।

पदार्थ—हे मनुष्यो! सब हम लोग (य:) जो (न:) हम लोगों की (धिय:) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुण-कर्म और स्वभावों में प्रेरित करें उस (सवितु:) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी और (देवस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सबके प्रकाश करनेवाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के (तत्) उस (वरेण्यम्) सबसे उत्तम प्राप्त होने योग्य (भर्ग:) पापरूप दु:खों के मूल को नष्ट करनेवाले प्रभाव को (धीमहि) धारण करें।

भावार्थ—जो मनुष्य सबके साक्षी पिता के सदृश वर्त्तमान, न्यायेश, दयालु, शुद्ध, सनातन सबके आत्माओं के साक्षी परमात्मा की ही स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं। उनको कृपा का समुद्र सबसे श्रेष्ठ परमेश्वर, दुष्ट आचरण से पृथक् करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करा और पवित्र तथा पुरुषार्थयुक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराता है।" [ऋ० म० ३, सूक्त ६२, मंत्र १०][1]

---

१. "गायत्री-मीमांसा" पृष्ठ २।

२. 'शुक्ल यजुर्वेदसंहिता' (१-१८ अध्याय, प्रथमभाग) सनातनभाष्य संवलिता, पृष्ठ ८७ [श्री स्वामी गोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य द्वारा सम्पादित, संवत् २०३७ वि० में सद्गुरु गंगेश्वर इण्टरनेशनल वेदमिशन, तुलसीनिवास, ३।३१ डी० रोड, चर्चगेट, बम्बई द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति]

३. सन् १९७६ ई० में चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित, चतुर्थ संस्करण, [The texts of the white Yajurveda, translated with a popular commentary] २२।९; ३०।२; ३६।३ सभी स्थलों पर एक-सा ही अनुवाद है।

१. ऋग्वेदभाष्यम्, तृतीयमण्डलम् (पंचम भागात्मकम्), पृष्ठ ५४३ [संवत् २०२० वि० वैदिक यंत्रालय, अजमेर, तृतीयावृत्ति]

यजु० ३।५ का भाष्य

पदार्थ—(तत्) वक्ष्यमाणम् (सवितुः) सर्वस्य जगतः प्रसवितुः। सविता वै देवानां प्रसविता तथोहास्माऽएते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामाः समृध्यन्ते ॥ शत० २।३।४।३९ (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठम्। अत्र वृञ एण्यः ॥ उ० ३।९८॥ अनेन वृञ् धातोरेण्यप्रत्ययः (भर्गः) भृज्जन्ति पापानि दुःखमूलानि येन तत्। अंच्यञ्जि युजि०॥ उ० ४।२१६॥ इति भ्रस्जधातोरसुन्प्रत्ययः कवर्गादेशश्च (देवस्य) प्रकाशमयस्य शुद्धस्य सर्वसुखप्रदातुः परमेश्वरस्य(धीमहि) दधीमहि। अत्रडुधाञ्-धातोः प्रार्थनायां लिङ् छन्दस्युभयथेत्याधधातुकत्वाच्छब् न। आतो लोप इटि चेत्यकारलोपश्च। (धियः) प्रज्ञा बुद्धीः। धीरिति प्रज्ञानामसु पठितम्॥ निघं० ३।९॥ (यः) सविता देवः परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (चोदयात्) प्ररयेत्। अयं मंत्रः शत० २।३।४ ३९ व्याख्यातः ॥३५॥

पदार्थ—हम लोग (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमय, शुद्ध वा सुख देनेवाले परमेश्वर का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुःखों के मूल को नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) धारण करें और (यः) जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी करुणा करके (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को उत्तम-उत्तम गुण-कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें।"[1]

यजु० २२।९ का भाष्य —"पदार्थः—(तत्) (सवितुः) सकलजगदुत्पादकस्य (वरेण्यम्) वरेण्यं वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् (भर्गः) सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धम् (देवस्य) स्वप्रकाशस्वरूपस्य सर्वैः कमनीयस्य सर्वसुखप्रदस्य (धीमहि) दधीमहि (धियः) प्रज्ञाः (यः) परमात्मा (नः) अस्माकम् (प्रचोदयायात्)।

पदार्थ—हे मनुष्यो! (सवितुः) समस्त संसार को उत्पन्न करनेहारे (देवस्य) आपसे आप ही प्रकाशरूप, सबके चाहने योग्य, समस्त सुखों के देनेहारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करनेवाले तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उसको तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को

१. "यजुर्वेदभाष्यम्" प्रथमो भागः, पृष्ठ १५१-१५२ [संवत् २०१५ वि० वैदिक यंत्रालय, अजमेर, तृतीयावृत्ति]

(प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे-अच्छे कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके उपासना करने योग्य है।"[1]

यजु० ३०।२ का भाष्य—"(तत्) (सवितुः) समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सर्वैश्वर्यप्रदस्य (वरेण्यम्) वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् (भर्गः) भृज्जन्ति दुःखानि यस्मात्तत् (देवस्य) सुखप्रदातुः (धीमहि) धरेम (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (यः) (नः) अस्माकम् (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्।"

पदार्थ—"हे मनुष्यो! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक, सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देने हारे ईश्वर का जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिससे दुखों का नाश हो उस शुद्धस्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो।"[2]

यजु० ३६।३ का भाष्य—"पदार्थ—(भूः) कर्मविद्याम् (भुवः) उपासनाविद्याम् (स्वः) ज्ञानविद्याम् (तत्) इन्द्रियैरग्राह्यं परोक्षम् (सवितुः) सकलैश्वर्यप्रदस्येश्वरस्य (वरेण्यम्) स्वीकर्त्तव्यम् (भर्गः) सर्वदुःखप्रणाशकं तेजः स्वरूपम् (देवस्य) कमनीयस्य (धीमहि) ध्यायेम (धियः) प्रज्ञाः (यः) (नः) अस्माकम् (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्।"

पदार्थः—"हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासनाकाण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य, परोक्ष (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजः स्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें वैसे तुमलोग भी इसका ध्यान करो।"[3]

१. "यजुर्वेद-भाष्यम् (तृतीयोभागः) पृष्ठ ८०-८१ [संवत् २०१८ वि० वैदिक यन्त्रालय अजमेर, द्वितीयावृत्ति]

२. वही, पृष्ठ ४३९।

३. यजुर्वेद-भाष्यम्" (चतुर्थोभागः) पृष्ठ १०३६-१०३७ [संवत्१९४६ वि० वैदिक यन्त्रालय, अजमेर]

पुनः 'पञ्चमहायज्ञविधिः'[1] से "भाष्यम्—अस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमन्त्रस्य संक्षेपेणार्थ उच्यते । अ उ म् एतत्त्रयं मिलित्वा 'ओम्' इत्यक्षरं भवति । यथाह मनुः—अकारं चाप्युकारं च, मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ म० अ० २॥ एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति । एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम् । तद्यथा-अकारेण विराडग्निविश्वादीनि । (विराट्) विविधं चराचरं जगद्राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः । (अग्निः) अच्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्वद्भिश्चेत्यग्निः परमेश्वरः । (विश्वः) विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्स विश्वः । यद्वा विष्टोस्ति प्रकृत्यादिषु, यः स विश्वः, एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः । उकारेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि। तद्यथा । (हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य तथा सूर्य्यादीनां तेजसां यो गर्भोधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः। अत्र प्रमाणम्—ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषो ऽमृतं हिरण्यम् । श० का०६। अ० ७। यशो वै हिरण्यम् । ऐ० पं०७। अ०३। (वायुः) यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात्सर्वं जागत्स वायुः स चेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः । (तद्वायुरिति) मन्त्रवर्णार्थाद् ब्रह्मणो वायुः संज्ञास्ति (तैजसः) सूर्य्यादीनां प्रकाशकत्वात्स्वयं प्रकाशत्वात्तैजस ईश्वरः । एतदाद्यर्था उकाराद्विज्ञातव्याः । मकारेणेश्वरादित्यप्राज्ञादीनि नामानि बोध्यानि, तद्यथा । (ईश्वरः) ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान्न्यायकारीश्वरः । आदित्यः) अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा । (प्राज्ञः) प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञश्च परमात्मैवैति । एतदाद्यर्था मकारेण निश्चेतव्या ध्येयाश्चेति ॥ अथ महाव्याहृत्यर्थाः संक्षेपतः—

भूरिति वै प्राणः । भुवरित्यपानः । स्वरिति व्यानः । इति तैत्तिरीयोपनिषद्वचनम् । प्रपा० ७। अनु० ६ । (भूः) प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः स प्राणः प्राणादपि प्रियस्वरूपो वा स चेश्वर एवायमर्था भूशब्दस्य ज्ञेयः (भुवः) यो मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वदुःखमपानयति दूरीकरोति सोऽपानो दयालुरीश्वरो ऽस्त्ययं भुवः शब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम् (स्वः) यदभिव्याप्य व्यावयति चेष्टयति प्राणादिसकलं जगत्स व्यानः सर्वाधिष्ठानं बृहद् ब्रह्मेति खल्वयं स्वः शब्दार्थोस्तीति

---

१. 'दयानन्दग्रन्थमाला शताब्दीसंस्करण (प्रथमभाग) पृष्ठ ८६५ से ८६६ तक [संवत् १९८१ वि० सन् १९२५ ई०, प्रथमावृत्ति]

मन्तव्यम् । एतदाद्यर्था महाव्याहृतीनां ज्ञातव्याः । (सविता) सुनोति सूयते सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत्स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा, सवितुः प्रसव इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽर्थोस्ति स सवितेत्युच्यत इतिमन्तव्यम् ॥ (वरेण्यम्) यद्वरं वर्तुमर्हमतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् (भर्गः) यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद्भर्गः । (देवस्य) दीव्यति यः प्रकाशयति खल्वानन्दयति सर्वं विश्वं स देवः । तस्य (देवस्य) (धीमहि) तमेव परमात्मानं वयं नित्यमुपासीमहि । कस्मै प्रयोजनाय तस्य धारणेन विज्ञानादिबलेनैव वयं पुष्टा दृढाः सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै प्रयोजनाय तथाच (धियो) धारणवत्यो बुद्धयः (यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् । हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अजः, हे निराकार सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे करुणामृतवारिधे । (सवितुर्देवस्य) तव यद्वरेण्यं भर्गस्तद्वयं धीमहि कस्मै प्रयोजनाय (यः) सविता देवः परमेश्वरः स नो ऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् । यो हि सम्यग्ध्यातः प्रार्थितः सर्वेष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वभक्त्या च ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धर्मजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दप्राप्तिमतीरस्माकं धियः कुर्य्यादस्मै प्रयोजनाय । तत्परमात्मस्वरूपं वयं धीमहीति संक्षेपतो गायत्र्यर्थो विज्ञेयः । एवं प्रातः सायं द्वयोः सन्ध्योरेकान्तदेशं गत्वा शान्तो भूत्वा यतात्मा सन् परमेश्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत् ॥

भाषार्थ—अथ गुरुमन्त्रः—(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार, उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिसमें सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है, इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है जैसे; अकार से (विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है । (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है । (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ आकर से जानना चाहिए । उकार से (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्य्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करनेहारे सूर्य्यादि लोकों का उत्पन्न करनेवाला है । इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं । ज्योति के नाम हिरण्य, अमृत और कीर्त्ति हैं । (वायुः) जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार-

मात्रा से जानना चाहिए तथा मकार से (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है (आदित्यः) जो नाशरहित है (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना, यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया। अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जाने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम (भूः) है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करनेवालों मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम (भुवः) है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सबको नियम में रखता और सबके ठहरने का स्थान तथा सुख स्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम (स्वः) है। यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिख दिया। अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं–(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य का देनेवाला है। (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है। (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है, (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें, किस प्रयोजन के लिए कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे इसलिए सब लोगों को चाहिए कि सत्, चित् आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देहरूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों।"

पुनः 'सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास'[1] से—"इस मंत्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उसका अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है, वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतिओं के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं।" भूरिति वै प्राणः "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर

१. वही, पृष्ठ १२१-१२२

का नाम है। "भुवरित्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'भुवः" है। "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है, इसीलिए उस परमेश्वर का नाम "स्वः" हैं। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७। अनु० ५] के हैं। (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्वसुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें। किस प्रयोजन के लिए कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।" हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अज निरञ्जन निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् हे सर्वाधार जगत्पते ! सकल जगदुत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन्। हे करुणामृतवारिधे ! सवितुर्देवस्य तव यदों भुर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह ! हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात्। स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे।

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्तस्वभाववाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकाररहित, सबके घट-घट का जाननेवाला, सबका धर्ता पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने के योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध, चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेष्टाचार, सत्यमार्ग में चलाये, उसको

छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हमलोग नहीं करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।"

चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकारः मीमांसातीर्थ—ऋग्वेद-मण्डल ३ सूक्त ६२ मंत्र १० का भाष्य—

"(यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरण करता है (सवितुः) सर्वोत्पादक उस (देवस्य) प्रकाश-स्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वदाता परमेश्वर के (तत्) उस अनुपम (वरेण्यम्) सर्व-श्रेष्ठ (भर्गः) पापों को भून डालनेवाले, समस्त कर्मबन्धनों को भस्म करनेवाले तेज को (धीमहि) धारण करें और और उसी का ध्यान करें।

(२) जो (नः) हमारे (धियः) समस्त कर्मों को संचालित करता उस सर्व-प्रेरक देव, दानशील सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उस सर्वशत्रुतापक तेज और प्रजा भृत्यादि पालक (भर्गः) अन्न को (धीमहि) धारण करें।"[1]

पुनः—यजु० ३।३५ का भाष्य—"राजा के पक्ष में—(सवितुः) समस्त देवों के प्रसविता, उत्पादक और उत्कृष्ट शासक, आज्ञपक, प्रेरक (देवस्य) विजेता महा-राज के (तत्) उस (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पाप को भून डालनेवाले तेज को हम सदा (धीमहि) धारण करें, सदा अपने ध्यान में रक्खें, (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों और समस्त कार्यव्यवहारों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग पर संचालित करता है।

ईश्वर पक्ष में—समस्त सगत् के उत्पादक और संचालक उस देव परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ, पापनाशक तेज को हम धारण करें (यः नः प्रचोदयात्) जो हमें सन्मार्ग में सदा प्रेरित करे—शत० २।३।४।३९॥[2]

पुनः—यजु० ३०।२ का भाष्य—"(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सबके प्रकाशक प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठपद को प्राप्त करने-वाले, एवं सबों से वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्गः) पापों के भून डालनेवाले

---

१. "ऋग्वेदसंहिता भाषाभाष्य (तृतीय खण्ड)" पृष्ठ ३३३ [संवत् १९९१ वि० में आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर द्वारा प्रकाशित, प्रथमावृत्ति)

२. "यजुर्वेद-संहिता भाषाभाष्य (प्रथम खण्ड) पृष्ठ ८६ [संवत् १९९६ वि० सन् १९४० ई०, द्वितीयावृत्ति, आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर]

तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और स्तुतिवाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग से प्रेरित करे।

—शत० १३।६।२।९।"[1]

पुनः सामवेद, उत्तरार्चिक १४६२ का भाष्य—"ब्रह्मगायत्री, गुरुमन्त्र, वेद-माता, सावित्री आदि। (तत्) उस (सवितुः) सर्वजगत् के प्रेरक, उत्पादक (देवस्य) स्वतः प्रकाशमान, सबके प्रकाशक, सब सुखों के दाता परमेश्वर के (वरेण्यं) सर्वोत्कृष्ट, वरण करने योग्य, अनुपम, (भर्गः) अविद्या, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अज्ञान से पैदा होनेहारे तामस अंकुरों को अग्नि और सूर्य के प्रखर तेज के समान भस्म कर डालनेहारे तेज का हम (धीमहि) ध्यान करें, धारण करें (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्मवृत्तियों को (प्रचो-दयात्) उत्तम सन्मार्ग में प्रेरित करता है।"[2]

पं० तुलसीरामजी स्वामी—(सामवेद १४६२ का भाष्य): "अन्वितपदार्थः—वयमुपासकाः तस्य (सवितुः) सर्वपितुः (देवस्य) प्रकाशमानस्य देवस्य (तत्) अनिर्वचनीयं (वरेण्यम्) वरणीयं (भर्गः) तेजः (धीमहि) ध्यायामः (यः) सविता देवः (नः) अस्माकं (धियः) बुद्धीः (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्॥

यः सविता देवः परमेश्वरोऽस्माकं धर्मादिविषयाबुद्धीः प्ररयेत् तस्य सवितुः सर्वपितुरीश्वरस्य वरेण्यं सत्स्वरूपतया ज्ञेयतया च भजनीयं अविद्या तत्कार्याणां भर्जकत्वद्भर्गो ज्योतिर्मयं स्वरूपं ध्यायामः।

यद्वा—यः सविता सूर्यो देवो द्योतमानोऽस्माकं धियः कर्माणि बुद्धीर्वा प्रकाशेन प्रेरयति तस्य वरेण्यं भजनीयं सेवनीयं ज्योतिरातपं भर्गः सर्वस्य मालिन्यस्य भर्जकं शोधकं वयं धीमहि धारयेम। सूर्यज्योतिः सेवनाद् दुर्गन्धादिजनितसर्वदुःखदायक-जन्त्वादिनिवृतिरतः सर्वैः सेवनीयं तत् इति भावः।

अथवा भर्गः शब्देवाऽन्नमुच्यते। सूर्यादिवोषधिवनस्पतयो जायन्ते ताभ्योऽन्नम्। "भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः" इति सायाणाचार्योद्धृतः पाठ आथर्वणिकानाम्।

---

१. "यजुर्वेदसंहिता भाषाभाष्य, (द्वितीय खण्ड), पृष्ठ ४८९-४९० [संवत् २००५ वि०, द्वितीयावृत्ति, आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर]

२. "सामवेदसंहिता भाषाभाष्य" पृष्ठ ६३३-६३४ [संवत् २००३ वि०, तृतीयावृत्ति, आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर]

इमानेवार्थान्साणायचार्यो व्याचख्यौ। भर्ग इत्यत्र भ्रस्जो पाके (तु० उ०) इत्यस्मात् सर्वधातुभ्योऽसुन्। उणा० ४।१८६ इत्यनुवर्त्त्य, अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुत्वञ्च। उण० ४।२१६ इति असुनि कुत्वे भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम् ६।४।४० इति रमागमः। सायणाचार्येण च न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वमित्ति (उणादिसूत्रं विस्मृत्य) उक्तम्। धीमहि इत्यत्र ध्यायतेर्लेठि—बहुलं छन्दसि ६।१।३४ इति संप्रसारणं, व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम्। यद्वा-धीङ् आधारे (दि० आ०) लिटि—बहुलं छन्दसि २।४।७३ इति विकरणस्य लुक्। प्रचोदयात् इत्यत्र लेटि आडाऽऽगमः। ऋग्वेदे ३।६२।१०ऽपि।

अत्राऽपि सूक्तसंख्यायां मतान्तरम्। यथाह सामश्रमी—"विवरणमते संहितादिसमस्तमूलग्रन्थलिपिदर्शनाच्चैतत् तृचं सूक्तम्। एवं चाग्रिमे "सोमानं स्वरणम्" इति, अग्न आयूंषि," इति च द्वे ऋचावस्यैव द्वितीयतृतीये, न तु सूक्तान्तरमिति विवेकः "इति॥१॥

भाषार्थ—हम उपासक लोग उस (सवितुः) सर्वोत्पादक सर्वपिता (देवस्य) प्रकाशमान, ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर के (तत्) उस अनिर्वचनीय (वरेण्यम्) वरणीय, भजनीय (भर्गः) तेज का (धीमहि) ध्यान करते हैं (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) अत्यन्त प्रेरित करे।

अर्थात् जो सर्वजगदुत्पादक सर्व पिता सवितादेव ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हमारी धर्मादिविषयक बुद्धियों को भले प्रकार प्रेरित करे उस जगदीश्वर के भजनीय और भर्ग=अविद्यादि दुःखदायक विघ्नों के मून डालनेवाले ज्ञानस्वरूप का हम ध्यान करते हैं।

अथवा (यः) जो सूर्य (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है उस (सवितुः) ओषधि, वनस्पत्यादि सब प्राणिजगत् की उत्पत्ति के निमित्तभूत (देवस्य) प्रकाशमान सूर्य के (तत्) उस अनिर्वचनीय, इयत्ता से जानने में न आनेवाले (वरेण्यम्) सेवनीय (भर्गः) दुर्गन्धादिजनित दुष्ट-जन्तु-रोग कारकों के मून डालनेवाले [धूप] को हम (धीमहि) धारण करते हैं।

सूर्य की धूप के सेवन से दुर्गन्धादि दोष दूर होकर नैरोग्यादि की वृद्धि होती है और उसकी धूप तथा प्रकाश से निद्रा, आलस्यादि तमोगुण के कर्मों का नाश होकर मनुष्यों की बुद्धियाँ फुरती हैं। हमको यह सब जानकर सूर्य की धूप का विधिवत् सेवन करके उपकार ग्रहण करना चाहिए। यद्वा—भर्गः शब्द से सबका

ग्रहण जानिए। सूर्य द्वारा वर्षा और यव, गोधूमादि ओषधि और वट पिप्पलादि वनस्पति उगते हैं जिनसे अन्न होता है। इसलिए सूर्यजनित अन्न का विधिपूर्वक धारण, सेवन करना इस मंत्र का उपदेश है। सायणाचार्य ने भर्गः पद से अन्न अर्थ लेने में एक आथर्वणिकों का मत उद्धृत किया है जो हमने ऊपर संस्कृत भाष्य में लिख दिया है।

ये ही तीनों अर्थ सायणाचार्य ने भी किये हैं। (भर्गः, धीमहि और प्रचोदयात् पदों की सिद्धि में अष्टाध्यायी ६।४।४७; ६।१।३४ २।४।७३ और उणादि ४।१८६, ४।२१६ के प्रमाण संस्कृत भाष्य में देखिए।

इसमें भी सूक्त संख्या में मतभेद है। सत्यव्रतसामश्रमी जी कहते हैं कि विवरण के मत और समस्त मूलसंहिता ग्रन्थों के देखने से ज्ञात होता है कि यह तीन ऋचा का सूक्त है। तथाच इससे अगली "सोमानं स्व०" और "अग्न आयूंषि" ये दो ऋचाएँ इसी सूक्त की दूसरी और तीसरी ऋचा जाननी चाहिएँ न कि अलग अन्य सूक्त। यह विवेक है। "हमने जो ऊपर इसको एकर्चसूक्त लिखा है सो सायणाचार्य का मत है।"[1]

वैदिक रिसर्चस्कॉलर पण्डित धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड कृत अंग्रेजी अनुवाद—"We meditate upon the adorable glory of God who is the Creator of the world and giver of peace and bliss .May he insprine our intellects and prompt our actions. We give below a free Metrical translation of this most important mantra with Om and Vyahritis, elucidating the ideas to a crtain extent.[2]

अर्थात्—"हम परमात्मा की पूजनीय कीर्ति का ध्यान करते हैं जो सृष्टिकर्ता, शान्ति और मोक्षदायक है। वह हमारे ज्ञान को और हमारे कार्यों को शीघ्र उत्तेजित करता है।..."

---

१. "सामवेदभाष्यम्" उत्तरार्धम्, पृष्ठ १४२९ से १४३२ तक फाल्गुने १९६४ वि० संवत् में स्वामी मशीन यन्त्रालय मेरठ द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]

२. "The Hymns of the Sama Veda Samhita translated with notes and comments." pp.671 [दिसम्बर १९६७ ई० में लेखक द्वारा ज्वालापुर से प्रकाशित]

श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड—(यजु० ३।३५) "(सवितुः. देवस्य) उत्पादक, प्रेरक, ज्ञानप्रकाशकमय ज्ञानदाता परमात्मा के (तत-वरेण्यं भर्गः—धीमहि) उस प्रसिद्ध अवश्य वरने योग्य—जिसका वरना मानव के लिए अनिवार्य है ऐसे पाप, दुःख, अज्ञान-अन्धकार के तापक नाशक (भर्गः"अञ्च्य-ञ्जियुजि" उणा० ४।२१६। इति भ्रज्जधातोरसुन् प्रत्ययः कवर्गादिशश्च") ज्ञान-मय तेज को हम धारण करें। (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो सविता देव परमात्मा हमारे प्रज्ञानों ("धी; प्रज्ञाननाम" निघं० ३।६) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को अपनी ओर प्रेरित करें उसका मन से मनन, बुद्धि से विवेचन, चित्त से स्मरण और अहंकार से ममत्व अपनाना चलता रहे उससे विमुख करनेवाले कार्यों में न लगे।

अथवा—

(देवस्य सवितुः) प्रकाशमय प्रेरक सूर्य के (त्त-वरेण्यं भर्गः-धीमहि) उस अवश्य वरने योग्य, तापक तेज का हम चिन्तन-मनन करें, ज्ञान प्राप्त करें (यः-नः धियः प्रचोदयात्) जो तापक तेज हमारे कर्मों को आगे बढ़ाता है, सूर्य के ताप से अनेक कर्म सम्पन्न हो सकते हैं भोजनपाक रोगनिवृत्ति, यन्त्रचालन, विमानचालन।"[1]

पुनः सामवेद १४६२ के भाष्य में—"(देवस्य सवितुः) द्योतमान तथा प्रेरक (सविता वै देवानां प्रसविता—जै०२।३७१) ब्रह्मात्मा ब्रह्म वै देवः सविता"—तै० सं० ५।३।४।४) महान् आत्मा परमात्मा के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस वरणीय-वरने योग्य तेज-ज्ञानमय तेजस्वरूप को (धीमहि) हम ध्यावें-धारण करें यह आकांक्षा है (यः-नः—धियः प्रचोदयात्) जो प्रेरक परमात्मा हमारे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों को अपनी ओर प्रेरित करे, हमारा मन उसका मनन करे, बुद्धि उसका विवेचन करे, चित्त उसका स्मरण करे, अहंकार उसका ममत्व करे—उसे अपनावे।"[2] [सामवेद १४६२]

१. "यजुर्वेदान्वयार्थ [प्रथम दशाध्यायात्मक], पृष्ठ ५६-६० [संवत् २०२५ वि० सन् १६६८ ई० में लेखक द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण व आर्य साहित्य मण्डल लि० श्रीनगर रोड, अजमेर से प्राप्य]

२. सामवेद आध्यात्मिक मुनिभाष्य, उत्तरार्चिक, पृष्ठ ४३७ [संवत् २०२६ वि० सन् १६७२ ई० में लेखक द्वारा प्रकाशित व श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ द्वारा प्राप्य]

आचार्य पण्डित वैद्यनाथजी शास्त्री—"पदार्थः—'तत्' वह 'सवितुः' सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का 'वरेण्यं' श्रेष्ठ 'भर्गः' तेज 'देवस्य' देवका 'धीमहि' धारण करते हैं धियः' बुद्धियों को 'यः' जो 'नः' हमारी 'प्रचोदयात्' प्रेरित करता है।

वाक्यार्थ—जो हमारी बुद्धियों को सदा सत्कर्मों में प्रेरित करता है उस सृष्टि-कर्त्ता परमात्मादेव के श्रेष्ठ तेज को हम धारण करते हैं।"[1] [सामवेद १४६२]

पण्डित विश्वनाथ जी 'विद्यालंकार' विद्यामार्तण्ड—(सामवेद १४६२)—"(सवितुः) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (देवस्य) देवाधिदेव के (तत्) उस (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ तथा वरणयोग्य, (भर्गः) तथा पापों को भून देनेवाले तेज का, (धीमहि) हम योगविधि द्वारा ध्यान करते हैं, (यः) जो परमेश्वर कि (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करे।"[2]

पण्डित हरिशरणजी सिद्धान्तालंकार'—"[सामवेद १४६२]—"यह मन्त्र गायत्री छन्द में होने से गायत्री नाम से ही प्रसिद्ध है, मनु ने इसे वेदों का सारभूत माना है। इसकी भावना निम्न है—[सवितुः]=सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक—सकलैश्वर्यमय [देवस्य]=ज्ञान से दीप्त-दिव्य गुणविशिष्ट प्रभु के [तत्]=उस [वरेण्यं[=वरणीय [भर्गः]=तेज को जो कि सम्पूर्ण दोषों के भून डालने में समर्थ है—उस तेज को [धीमहि]=ध्यान करते है और धारण करते हैं। [यः]=जो तेज का धारण व ध्यान (व्यत्ययेन पुल्लिग है) [नः]= हमारी [धियः]=बुद्धियों को व कर्मों को [प्रचोदयात्]—प्रकृष्ट प्रेरणा प्राप्त कराता है।

संसार में मनुष्य का सबसे महान् लक्ष्य प्रभु के तेज से अपने को तेजस्वी बनाना ही होना चाहिए। अन्य चीजों की तुलना में वही तेज वरणीय है। यह हमारे ज्ञानों व कर्मों को सदा सत्प्रेरणा प्राप्त करा कर पवित्र बनाता है। इस प्रकार

१. "सामवेद-संहिता भाषाभाष्यसहित" पृष्ठ ७६२ [वि० संवत् २०२३ सन् १६६६ ई० में श्रीमती आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधिसभा, पंजाब, जालन्धर नगर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

२. "सामवेद [आध्यात्मिक भाष्य]", पृष्ठ ४८७ [ज्येष्ठ संवत् २०३३ वि० में दयानन्द संस्थान, वेदमन्दिर, १५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५ द्वारा प्रकाशित,]

हम सब मलों का इस भर्ग में भर्जन कर डालते हैं और रागद्वेषादि मलों से ऊपर उठ कर, 'विश्वामित्र, सभी के साथ स्नेह करनेवाले होते हैं। हम प्रेम से चलते हैं और प्रभु का गायन करते हैं—'गाधिन' बनते हैं। 'विश्वामित्र गाधिन' ही इस मंत्र का ऋषि है। यह मंत्र वेदों का सार है सो वेदों का निचोड़ यही तो हुआ कि 'प्रभु का स्मरण करो—और सभी के साथ स्नेह से चलो।

भावार्थ—हम वेद के इस उपदेश को न भूलें कि 'ऐ जीव तूने प्रभु के तेज से अपने को तेजस्वी बनाना है—तूने भी सविता देव' का अंश (Miniature) बनना है।"[1]

पं० हरिश्चन्द्रजी 'विद्यालंकार'—"जो प्रेरक एवं प्रकाशक हमारी बुद्धियों एवं कर्म प्रवृत्तियों को प्रेरित करता है उसके उस प्रसिद्ध, वरण करने योग्य एवं काम, क्रोध आदि तामस् अंकुरों को भस्म कर डालनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं।"[2]

म० म० ब्रह्मर्षि पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर साहित्यवाचस्पति' विद्यामार्तण्ड—[सामवेद १४६२]="(यः सविता देवः) जो सविता देव (नः धियः प्रचोदयात्) हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता है, उस (देवस्य सवितुः)सविता देव के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस श्रेष्ठ तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते है।"[3]

साहित्याचार्य पण्डित वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ—"(सामवेद १४६२)" "सबके प्रेरक तथा उत्पादक स्वयं प्रकाशमान तथा सबके प्रकाशक परमात्मा के उस वरण करने योग्य तथा अविद्या आदि दुर्गुणों को भस्म कर डालनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं और उसे धारण करते हैं, जो हमारी बुद्धियों

---

१. "सामवेद भाषाभाष्य" उत्तरार्चिक, पृष्ठ ७७६ [वि० संवत् २०२६, सन् १९७३ में आर्यसमाज १।२४८ रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-११००२२ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

२. "सामवेद संहिता" (ऋष्यादिसंवलिता), पृष्ठ ७२६ [श्रावण पूर्णिमा २०१२ वि० में सार्वदेशिक प्रकाशन लि०, पाटौदी हाउस, दरियागंज, द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण]

३. "सामवेद(अर्थ व स्पष्टीकरण सहित) पृष्ठ २५३ [स्वाध्याय-मण्डल, पारडी जि० बलसाड़ द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

और कर्मों को अच्छे मार्ग में प्रेरित करे।"[1]

पण्डित विद्यानिधि शास्त्री, व्याकरण-साहित्याचार्य, सिद्धान्तशिरोमणि, विद्याप्रभाकर—"(सामवेद १४६२)—

'सवितादेव जगत् को धारें, उनका दिव्य तेज हम धारें।
जो वरणीय पापनाशक है, प्रेरे मति वह पथ भासक है।"[2]

इस गायत्री मन्त्र का **पं० डब्ल्यू० जोन्स**कृत अनुवाद:—"हम (तत्) उस (देवस्य सवितुः) देव सविता परमात्मा के (भर्गः) उत्तम तेज की (धीमहि) उपासना करते हैं जो (देवः) सबको प्रकाशित करता है, जो (सविता) सबको उत्पन्न करता है और जिससे सब उत्पन्न होते हैं और जिसमें (भर्गः) सब लीन हो जाते हैं, उसी को हम(नः धियः) प्रेरणा करने की प्रार्थना करते हैं।"[3]

पं० क्षेमकरणदासजी 'त्रिवेदी':—"(तत्) उस (देवस्य) प्रकाशमय (सवितुः) सबके चलानेहारे जगदीश्वर के (वरेण्यम्) अति उत्तम (भर्गः) ज्योति को (धीमहि) हम धारण करें (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों वा कर्मों को (प्रचोदयात्) आगे बढ़ावें।"[4]

पं० बुद्धदेवजी 'विद्यालङ्कार':—"(ओ३म्)=(अ) विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला (उ) जिसके गर्भ में सूर्य्यादि लोक हैं। (म्) जो सबका स्वामी नाशरहित तथा ज्ञानस्वरूप है (भूः)जो प्राणों से भी प्रिय है (भुवः) जो मुक्तों और भक्तों को दुःखों से अलग करनेवाला है। (स्वः) जो सब जगत् में व्यापक होकर उसे नियम में रखता है तथा सुखस्वरूप है (सवितुः) सब जगत् के ऐश्वर्यदायक

---

१. "सामवेद उत्तरार्ध", पृष्ठ १९१ [मासिक पत्रिका "वेदवाणी" वाराणसी, वर्ष २, अंक १२ का विशेषांक]

२. "सामवेद-संहिता (हिन्दी पद्यानुवाद), पृष्ठ ४१० [संवत् २०३४; सन् १९७७ ई० में भारतीय रोड क्षत्रिय महासभा, जी० टी० रोड, करनाल (हरयाणा) द्वारा प्रकाशित]

३. पं० जयदेव शर्मा 'विद्यालंकार' मीमांसातीर्थकृत "सामदेव संहिता भाषा-भाष्य" पृष्ठ ६३४ की पाद टिप्पणी।

४. "गोपथ ब्राह्मण आर्यभाषानुवाद" पृष्ठ ७१ [संवत् १९८१ वि० सन् १९२४ ई०, प्रथमावृत्ति, प्रयाग]

(देवस्य) सबके आत्माओं को प्रकाश करनेवाले देव के (तत्) उस (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (भर्गः) शुद्ध विज्ञानस्वरूप को (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम-भक्ति से निश्चय करके अपनी आत्मा में धारण करें (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके उत्तम कामों में प्रवृत्त करे।"[1]

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती और 'गायत्री' शब्द :—

गायत्र्या = गायत्रीनिष्पादितया विद्यया = गायत्री [यजु० १३।३४]

गायत्री = या गायन्तं त्रायते सा = गाते हुए का रक्षक गायत्री मन्त्रार्थ ईश्वर [यजु० १३।५४]

गायत्री = या गायन्तं त्रायते सा = गानेवाले का रक्षक ईश्वर [यजु० १४।१८]

गायत्री = गायन्तं त्रायमाणा = गानेवाले की रक्षा करती हुई गायत्री। [यजु० २३।३३]

गायत्रीम् = सदर्थान् प्रकाशयन्तीम् = सत्य अर्थों का प्रकाश करनेवाली गायत्री—[यजु० २८।२४]

गायत्र्या = गायत्री—[यजु० २८।३५]

गायत्र्याम् = गायतो रक्षिकायां विद्यायाम् = पढ़नेवालों की रक्षक विद्या— [यजु० ३८।१८]

गायत्रीम् = यया गायन्तं त्रायते तां नीतिम् = गान करनेवाले की रक्षा करने-वाली राजनीति की [यजु० ६।३२]

गायत्री = पठितं गायत्री छन्दः = पढ़ा हुआ गायत्री छन्द [यजु० १०।१०]

गायत्रेण = गायत्री छन्द आदिर्यस्य प्रगाथस्य तेन = गायत्री छन्दवाले प्रगाथों से = [ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १२ मन्त्र ११]

गायत्रम् = गायत्री प्रगाथा येषु चतुर्षु वेदेषु तं वेदचतुष्टयम् = गायत्री आदि छन्दों से युक्त [ऋ० १।२७।४]

---

१. "पंचयज्ञ प्रकाश" पृष्ठ १०३-१०४ [संवत् २००४ वि० में लेखक द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

ब्राह्मणग्रन्थों में 'गायत्री' शब्द—

"गायत्री समिद्धान्यानि छन्दांसि"—[शतपथ ब्राह्मण १।३।४।६]
= इस प्रकार वह गायत्री को जलाता है।

वीर्यं गायत्री = [शतपथ ब्रा० १।३।५।४] = गायत्री वीर्य है।

ब्रह्म गायत्री = [शतपथ ब्रा० १।३।५।४] = गायत्री ब्रह्म है।

गायत्र्यं वाऽअग्नेश्छन्दः = [शतपथ ब्रा० १।३।५।४] = गायत्री अग्नि का छन्द है।

गायत्री वै प्राणः = [शतपथ ब्रा० १।३।५।१५] = गायत्री प्राण है।

या वै सा गायत्र्यासीदियं वै सा पृथिवीयम् = [शतपथ ब्रा० १।४।१।३४]
= जो गायत्री थी वही यह पृथिवी है।

गायत्री वाऽएषा निदानेनाष्टाक्षरा वै गायत्री = [शतपथ ब्रा० १।४।१।३६]
= यह विशेष रीति से गायत्री है, क्योंकि गायत्री में आठ अक्षर होते हैं।

सा वै गायत्रीयं त्रिष्टुबसौ स वै गायत्री = [शतपथ ब्रा० १।७।२।१५]
= वह (पृथिवी) गायत्री है। यह त्रिष्टुप् है।

छन्द = सद्गायत्री = [शतपथ ब्रा० १।८।२।१०]
= गायत्री छन्द।

गायत्री वा अग्निः = [शतपथ ब्रा० १।८।२।१३]
= गायत्री ही अग्नि है।

यो वाऽअत्राग्निर्गायत्री स निदानेन = [शतपथ ब्रा० १।८।२।१५]
= जो अग्नि है वह निदान में गायत्री ही है।

गायत्री वीर्यम् = [शतपथ ब्रा० १।६।१।१७] = गायत्री वीर्य है।

गायत्रेण छन्दसा = [शतपथ ब्रा० १।६।३।१०]

पूर्वार्धो वै यज्ञस्य गायत्री = [शतपथ ब्रा० ३।४।१।१५]
= गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है।

चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री पूर्वार्धो वै यज्ञस्य गायत्री = [शतपथ ब्रा० ३।५।१।१०]

= गायत्री चौबीस अक्षर की होती है। गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है।

अष्टाक्षरा वै गायत्री पूर्वार्धो वै यज्ञस्य गायत्री = [शतपथ ब्रा० ३।६।४।२०]

=आठ अक्षर की गायत्री होती है। गायत्री यज्ञ का पूर्वार्ध है।

अग्निर्वै गायत्री=[शतपथ ब्रा० ३।९।४।१०]=अग्नि गायत्री है।

यज्ञो वै गायत्री=[शतपथ ब्रा० ४।२।४।२०]

=यज्ञ गायत्री है।

गायत्री वाऽइयं पृथिवी=[शतपथ ब्रा० ४।३।।४९]

=यह पृथिवी गायत्री है।

प्राचीमारोह गायत्री=[शतपथ ब्रा० ५।४।१।३]

=गायत्री तेरी रक्षा करे।

अग्निगायत्री=[शतपथ ब्रा० ६।१।१।१५]=अग्नि ही गायत्री है।

"प्राणो गायत्री"=[शतपथ ब्रा० ६।२।१।२४, ६।६।२।७]

=प्राण गायत्री है।

प्राणो गायत्री=[शतपथ ब्रा० ६।४।२।५]

=प्राण गायत्री है।

यो वै स प्राण ऽएषा सा गायत्री=[शतपथ ब्रा० ७।५।१।२१]

=जो प्राण है वही यह गायत्री है।

तस्य शिरो गायत्र्यः=[शतपथ ब्रा० ८।६।२।३ व ६]

=इसका सिर गायत्री छन्द है।

गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शिरः=[शतपथ ब्रा० १०।३।२।१]

=गायत्री छन्द और अग्नि देवता है।

'सा हैषा गयांस्तत्रे। प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्-गायत्री नाम स यामेवामूमन्वाहैषैव सा स यस्मा ऽअन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते=
[शतपथ ब्रा० १४।८।१५।७]

=गायत्री इसीलिए कहते हैं कि वह "गयों" का त्राण (रक्षा) करती है। 'गय' प्राण को कहते हैं। यह प्राणों की रक्षा करती है। आचार्य जिस गायत्री का उपदेश करता है वह यही गायत्री है। यह उसके प्राणों की रक्षा करती है जिसको सिखाई जाती है।

"वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयो ऽन्नमाहुः। कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति।"
—[गोपथब्राह्मणपूर्वभागे प्र० १ कं० ३२]

=(वेदाः छन्दांसि) वेद छन्द [आनन्द देनेवाले कर्म] हैं, (कवयः देवस्य सवितुः वरेण्यं भर्गः अन्नम् आहुः) कवि लोग प्रकाशमान् सविता [सबके चलाने-वाले] के अतिश्रेष्ठ भर्गः [तेज] को अन्न कहते हैं। (कर्माणि धियःतत् उ ते ब्रवीमि) धियः कर्म है, यह भी तुझे बताता हूँ। (सविता प्रचोदयात्। याभिः; एति इति। [जिनको] सविता [सबका चलानेवाला] आगे बढ़ाता है और जिनसे चलता है।"[1]

"अष्टाक्षरा गायत्री गायत्रो यज्ञः"=
[गोपथ ब्रा० पूर्वभागे प्र० ४। कं० २४-३]

=आठ अक्षर [के पाद)-वाली गायत्री है। गायत्री से सिद्ध किया हुआ यज्ञ है।

"गायत्र्येव भर्गस्त्रिष्टुबेव"=[गोपथ ब्रा० पूर्वभागे प्र० ५। कं० १५।४]

=गायत्री [गाने योग्य वेदविद्या] ही तेज, त्रिष्टुप् [तीन कर्म, उपासना, ज्ञान को स्थिर करनेहारी विद्या है]।

"गायत्रीं शंसन्ति, तेजो वै ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री"=
[गोपथ ब्रा० उत्तरभागे प्र० ५। कं० ५]

=गायत्री [गायत्री मन्त्र और छन्द] को वे पढ़ते हैं, ब्रह्मवर्चस तेज [वेद पढ़ने से पाया हुआ तेज] ही गायत्री है।

"गायत्रो वै ब्राह्मणः"=[ऐतरेय ब्राह्मण १।२८]

=ब्राह्मण गायत्रीवाला है।

"ब्रह्म वै गायत्री=[ऐतरेय ब्रा० ४।११]

=गायत्री ब्रह्म है।

"तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री"=[ऐतरेय ब्रा० १।५]

="गायत्री तेज और ब्रह्मवर्चस् वाली है।

"अष्टाक्षरा गायत्री"=[ऐतरेय ब्रा० २।१७]

"गायत्री में आठ अक्षर होते हैं।

"चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री"=[ऐतरेय ब्रा० ३।३९]

---

१. पं० क्षेमकरणदास जी 'त्रिवेदीकृत' 'अथर्ववेदस्य गोपथब्राह्मण' आर्य भाषानुवाद-भावार्थसहितं, पृष्ठ ७१ [प्रथमावृत्तौ, प्रयाग]

=गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं।

"गायत्रो वै पुरुषः"—[ऐतरेय ब्रा० ४।३]

=पुरुष गायत्री होता है।

"एषा वै गायत्री पक्षिणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती भास्वती यद् द्वादशाहस्तस्य यावभितोऽतिरात्रौ तौ पक्षौ यावन्तराग्निष्टोमौ ते चक्षुषी ये ऽष्टौ मध्य उक्थ्याः स आत्मा"=[ऐतरेय ब्रा० ४।२३]

=वह पक्षिणी, चक्षुष्मती, ज्योतिष्मती और भास्वती गायत्री ही है। इसके दो जो अतिरात्र हैं वे दो पंख हैं। जो दो अग्निष्टोम हैं वे दो आँखें हैं। जो मध्य के आठ उक्थ्य हैं वे आत्मा हैं।

"या द्यौः साऽनुमतिः सो एव गायत्री"—[ऐतरेय ब्रा० ३।४८]

=द्यौ अनुमति है वह गायत्री है।

"गायत्र्या वै देवाः पाप्मानं शमलमपाघ्नत"=[ऐतरेय ब्रा० २।१७]

=देवता भी गायत्री की ही प्रकृति के हैं इसलिए उन्होंने पाप के अनिष्ट फलों का निवारण कर दिया।

"गायत्री गायतेः स्तुतिकर्म्मणः"=[देवताध्याय ३।२]

=गायतो मुखादुदपतदिति ह ब्राह्मणम्"=[देवताध्याय ३।३]

इयमेव (पृथिवी) गायत्री=[जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १।५५।३]

इयं (पृथिवी) वै गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० ७।३।११; १४।१।४]

गायत्रोऽयं (भू-) लोकः=[कौषीतकि ब्रा० ८।९]

अयमेव (भूलोकः) गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० ७।३।९]

गायत्रे ऽस्मिंल्लोके गायत्रोऽयमग्निरध्यूढः=[कौषीतकि ब्रा० १४।३]

प्राणो गायत्री प्रजननम्=[ताण्ड्य ब्रा० १६।१४।५]

तत्प्राणो वै गायत्रम्=[जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० १।३७।७]

प्राणो वै गायत्र्यः=[कौषीतकि ब्रा० १५।२; १६।३; १७।२]

गायत्र उ वै प्राणः=[तैत्तिरीय ब्रा० ३।३।५।३; कौषीतकि ब्रा० ८।५]

गायत्रः प्राणः=[ताण्ड्य ब्रा० २०।१६।५]

गायत्रो वा अग्निः=[कौषीतकि ब्रा० १।१; ३।२; ९।२; १९।४;
तैत्तिरीय ब्रा० १।१।५।३]

"गायत्रछन्द ह्यग्निः"=[ताण्ड्य ब्रा० ७।८।४]

गायत्रमग्नेश्छन्दः=[कौषीतकि ब्रा० १०।५; १४।२; २८।५]

गायत्रछन्दा अग्निः=[ताण्ड्य ब्रा० १६।५।१९]

गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः=[तैत्तिरीय ब्रा० १।१।९।६]

ब्रह्म हि गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० ११।११।९]

ब्रह्म उ गायत्री=[जैमिनीय उपनिषद् ब्रा० १।१।८]

ब्रह्म वै गायत्री=[कौषीतकि ब्रा० ३।५]

गायत्री ब्रह्मवर्चसम्=[ताण्ड्य ब्रा० ५।१।९; तैत्तिरीय ब्रा० २।७।३।३]

तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री=[कौषीतकि ब्रा० १७।२।९; ताण्ड्यब्रा० १५।१।८]

तेजो वै गायत्री छन्दसाम्=[ताण्ड्य ब्रा० १५।१०।६]

तेजो वै गायत्री=[तैत्तिरीय ब्रा० ३।९।४।६]

ज्योतिर्वै गायत्रीछन्दसाम्=[ताण्ड्य प्रा० १३।७।२]

ज्योतिर्वै गायत्री=[कौषीतकि ब्रा० १७।६]

दविद्युतती वै गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० १२।१।२]

वीर्य्यं वै गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० ७।३।१३]

शिरो गायत्री=[षड्विंश ब्रा० २।३]

मुखमेव गायत्री=[कौषीतकि ब्रा० ११।२]

मुखं गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० ७।३।७; १४।५।२८; १९।११।४]

गायत्री मुखम्=[जैमिनीम-उपनिषद् ब्रा० ४।८।२]

त्रिपदा गायत्री=[ताण्ड्य ब्रा० १०।५।४]

चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री=[कौषीतकि ब्रा० १२।३;
जैमिनीय उप० ब्रा ०१।१७।२]

गायत्रं साम=[जैमिनीय उप० ब्रा० १।१।८]

गायत्रं वै रथन्तरम्=[ताण्ड्य ब्रा० ५।१।१५]

गायत्री वै रेवती=[ताण्ड्य ब्रा० १६।५।१९]

गायत्रः सप्तदशस्तोमः=[ताण्ड्य ब्रा० ५।१।१५]

गायत्रीमात्रो वै स्तोमः=[कौषीतकि ब्रा० १९।८]

गायत्रो मैत्रावरुणः=[ताण्ड्य ब्रा० ५।१।१५]

गायत्राः पशवः=[तैत्तिरीय ब्रा० ३।२।१।१]

'इमे वै लोका गायत्री'=[ताण्ड्य ब्रा० १५।१०।९]

गायत्री वाव सर्वाणि छन्दांसि=[ताण्ड्य ब्रा० ८।४।४]

अन्यान्य धर्मग्रन्थों में गायत्री-महिमा

य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ।"

—[महाभारत, भीष्मपर्व अ० ४ श्लोक १६]

पं० रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' कृत अनुवाद—"भरतश्रेष्ठ ! जो लोक में स्थित इस सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमयी गायत्री को यथार्थ रूप से जानता है वह कभी नष्ट नहीं होता है ।"[1]

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः ।
करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन् ।।

—[महाभारत, अनुशासनपर्व, अ० १५० श्लोक ७०]

अर्थ—"जो उत्तम गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह पुरुष चारों वर्णों और विशेषतः चारों आश्रमों में सदा शान्ति स्थापन करता है ।"[2]

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्यां हीद ँ् सर्वं भूतं प्रतिष्ठि-तमेतामेव नातिशीयते ।" [छान्दोग्योपनिषद् ३।१२।२]

अर्थ–"निश्चय से जो पृथिवी है, निश्चय यह वह गायत्री है। जो यह इस पुरुष में शरीर है। इसी में ये प्राण प्रतिष्ठित हैं। इसी शरीर को ये प्राण नहीं लाँघते ।"[3]

ऋचो यजूंषि सामानीत्याष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु-हैवास्या एतत्स यावतीय त्रयी विद्या तावद्ध जयति यो ऽस्या एतदेवं पदं वेद ।"

—[बृहदारण्यकोपनिषद् ५।१४।२]

---

१. "महाभारत (तृतीय खण्ड), [उद्योगपर्व और भीष्मपर्व], पृष्ठ २५५४ [गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित]

२. "महाभारत (षष्ठखण्ड) [अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व], पृष्ठ ६०५४ [संवत् २०२१ वि०, द्वितीय संस्करण, गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित]

३. 'उपनिषद्-संग्रह' (पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थकृत अनुवाद), पृष्ठ १०२ [संवत् २०१३ वि० आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर, द्वितीयावृत्ति, संशोधित व परिवर्धित संस्करण]

अर्थ—"(ऋचः + यजूंषि + सामानि + इति + अष्टौ=अक्षराणि) ऋचः, यजूंषि, सामानि इनके आठ अक्षर हैं, (ह + वै + गायत्र्ये + एकम् + पदम् + अष्ट + अक्षरम्) निश्चय गायत्री का एक (दूसरा) पद (भर्गो देवस्य धीमहि) भी आठ अक्षरवाला है। (आस्या + एतत् + उ + ह) इस (गायत्री) का यह (एक पद) (एतत्) इन (तीनों वेद के बराबर है) (यावती + इयम् + त्रयी + विद्या) जितनी ये तीनों विद्याएँ हैं (तावत् + ह + सः + जयति × यः + अस्याः + एकम् + पदम् + एवम् + वेद) वह उतना प्राप्त कर लेता है जो इस (गायत्री) के इस पद को इस प्रकार जानता है।"[1]

"सैषा गायत्र्यैतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे···गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता
सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा···तस्माद्गायत्री नाम···।"

—[बृहदारण्यकोपनिषद् ५।१४।४]

अर्थ—"(सा + एषा + गायत्री) वह यह गायत्री (एतस्मिन्) इस (दर्शते + पदे) दर्शनीय पद (परोरजसि + तुरीये) सब लोकों से ऊपर तुरीय में (प्रतिष्ठता) प्रतिष्ठित है।···(एवम् + एषा + गायत्री + अध्यात्मं + प्रतिष्ठिता) इस प्रकार यह गायत्री अध्यात्म में प्रतिष्ठित है। (सा + एषा + ह + गयान् + तत्रे + प्राणाः + वै + गयाः + तत् + प्रणान् + तत्रे)सो इस (गायत्री) ने गयों की रक्षा की है। निश्चय ही प्राण गय हैं। प्राणों की (इस गायत्री ने) रक्षा की है (तत् + यत् + गयान् + तत्रे + तस्माद् + गायत्री) उस (गायत्री) ने जो गयों=प्राणों की रक्षा की है इसलिए गायत्री (नाम) है।"[2]

यह "सावित्री-मन्त्र गायत्री-छन्द विशिष्ट यजुर्मन्त्र के रूप में निरूपति हुआ है। उसके द्वारा ही यह सब-कुछ व्याप्त है। आठ अक्षरों का मन्त्र होने से ही उसको

---

१. उपनिषद् रहस्य, बृहदाराण्यकोपनिषद् (महात्मानारायण स्वामीजीकृत टीका), पृष्ठ ५३९-५४० [संवत् २००६ वि० द्वितीय संस्करण सार्वदेशिक प्रकाशन लि०, पटौदी हाउस, दरियागंज, दिल्ली[तुलना करो स्वामी द्वारिकादास शास्त्री द्वारा सम्पादित "अष्टाविंशत्युपनिषदः" पृष्ठ २३४ [सन् १९६५ ई०, प्रथमावृत्ति, प्राच्य भारती प्रकाशन। कमच्छा, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित]

२. वही, पृष्ठ ५४५।

गायत्री कहा गया है।" —[नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्][1]

जपन्नसीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥२४॥
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ॥२५॥

—[याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराऽध्याये, ब्रह्मचारीप्रकरणम् २][2]

अर्थ—"सायंकाल में नक्षत्रों के दिखाई देने तक और प्रातःकाल में सूर्योदय तक गायत्री का जाप करता हुआ ठहरे।"

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतान्मण्डं रसात् पयः।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते॥

—[बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृतिः ४।१६][3]

अर्थ—"जैसे फूलों का सारभूत मधु है। दूध का घी है और रसका दूध सार है। उसी प्रकार सब वेदों का सार गायत्री मन्त्र है।"

'मनुस्मृति' अध्याय २ श्लोक ७७ से ८३ तक 'गायत्री' की बड़ी महिमा दी गई है, जिसे महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनिजी के भाष्यसहित दिया जाता है—

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥७७॥

पदा०—"(परमेष्ठी, प्रजापतिः) सर्वोपरि प्रजापति ने (एव) निश्चय करके (त्रिभ्यः, वेदेभ्यः) तीनों वेदों से (तत् इति) तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि (अस्याः, सावित्र्याः) इस सावित्री (ऋचः) ऋचा का (पादं, पादं) क्रम से एक-एक पाद (अदूदुहत्) तीनों वेदों से दुहा।

भाष्य—सर्वोत्कृष्ट प्रजापति ने गायत्री के 'तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि' तीन पदों को ऋगादि तीन वेदों से प्रकाशित किया अर्थात् ऋग्वेद से 'तत्सवितुर्वरेण्यं',

---

१. मासिकपत्र "कल्याण" गोरखपुर का "उपनिषद् अङ्क" वर्ष २३ जनवरी, १९४९ ई० संख्या १, पृष्ठ ५७४।
२. याज्ञवल्क्यस्मृतिः मिताक्षराप्रकाशटीकासहित, पृष्ठ १२-१३ [संवत् १९८० वि० में लक्ष्मी वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई में श्री कृष्णदासात्मज-गंगाविष्णोः द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]
३. "स्मृति-सन्दर्भः" चतुर्थोभागः पृष्ठ २२७१ [संवत् २०१० वि० सन् १९५३ ई० में श्री मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित]

यजुर्वेद से 'भर्गो देवस्य धीमहि', सामवेद से 'धियोयो नः प्रचोदयात्' पाद को दुहा, ये तीनों पाद तीनों वेदों के तत्त्वरूप हैं अर्थात् एक-एक वेद का मुख्य विषय गायत्री के एक-एक चरण=पाद में होने से यह मन्त्र सब वेदों का सारभूत है।"

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥७८॥

पदा०—(एतत् अक्षरं) इस ओंकार अक्षर (च) और (व्याहृतिपूर्विकां) व्याहृतियों सहित (एतां) इस गायत्री को (सन्ध्ययोः) दोनों सन्ध्याओं में (जपन्) जपता हुआ (वेदवित्, विप्रः) वेद का ज्ञाता ब्राह्मण (वेदपुण्येन) वेद के पुण्य को (युज्यते) प्राप्त होता है।

भाष्य—वेद का जाननेवाला द्विज 'ओ३म्' और 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन व्याहृतियाँ जिसके पूर्व में युक्त में हैं ऐसे—'ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।' इस गायत्रीमन्त्र का प्रातः सायं दोनों समय एकान्त, शुद्ध स्थान में बैठकर विधिपूर्वक जपता हुआ वेदाध्ययन के फल को प्राप्त होता है अर्थात् वेदों के प्रधानभूत तीन विषयों का सावित्री, व्याहृति और प्रणव द्वारा बार-बार अभ्यास करने से चित्त की मलिनता का नाश होकर सत्त्व-गुण की प्रधानता द्वारा पुरुष वेदाध्ययन के फल को प्राप्त होता है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९॥

पदा०—(द्विजः) द्विज (बहिः) बाहर जाकर (एतत् त्रिकं) उक्त तीनों त्रिकों का (मासात्) एक मास पर्यन्त (सहस्रकृत्वः अभ्यस्य) प्रतिदिन सहस्रवार अभ्यास करने से (महतः, अपि) घोर पापों से भी (त्वचा, अहिः, इव) केंचुली से सर्प की भाँति (विमुच्यते) छूटकर शुद्ध हो जाता है।

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०॥

पदा०—(एतया, ऋचा) इस गायत्रीरूप ऋचा (च) और (काले) नियत समय पर (स्वया, क्रियया) अपनी अग्निहोत्र, सन्ध्योपासनादि क्रियाओं से (विसंयुक्तः) हीन (ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, (साधुषु) श्रेष्ठ पुरुषों के मध्य (गर्हणां, याति) निन्दा को प्राप्त होते हैं।

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥८१॥

पदा०—(ओंकारपूर्विकाः) ओंकारसहित (तिस्रः, अव्ययाः) तीनों अविनाशी (महाव्याहृतयः) व्याहृतियों (च) और (त्रिपदा) तीन चरणयुक्त (सावित्री) गायत्री (एव) निश्चय करके (ब्राह्मणः, मुखं) वेद का मुख (विज्ञेयं) जानना चाहिए।

भाष्य—नाशरहित 'ओ३म्' और 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्र का वेदाध्ययन के प्रारम्भ में उपदेश होने तथा ब्रह्मप्राप्ति का हेतु होने के कारण सम्पूर्ण वेदों का मुख है अर्थात् वेदाध्ययन का मुख्य साधन है।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥८२॥

पदा०—(यः, अतन्द्रितः) जो द्विज आलस्यरहित होकर (अहनि, अहनि, एतां) प्रतिदिन इस गायत्री को (त्रीणि, वर्षाणि) तीन वर्ष पर्यन्त (अधीते) जपता है (सः वायुभूतः) वह वायुवत् स्वतन्त्रचारी तथा (खमूर्तिमान्) कारणशरीर को धारण करके (परं ब्रह्म अभ्येति) पर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

भाष्य—जो पुरुष प्रतिदिन प्रमादरहित हो तीन वर्ष पर्यन्त समाहित चित्त होकर निर्जन देश में प्रणव तथा व्याहृतिसहित गायत्री का जप करता है वह सद्गति को प्राप्त होता है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परंतपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥८३॥

पदा०—(एकाक्षरं, परं ब्रह्म) एकाक्षर, 'ओ३म्' परब्रह्म का वाचक तथा (प्राणायामः परंतपः) प्राणायाम सर्वोपरि तप (च) और (सावित्र्याः) गायत्री से (परं नास्ति) श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं (तु) तथा (मौनात्, सत्यं) मौन से सत्य (विशिष्यते) अधिक है।

भाष्य—ओंकार का वाच्य ब्रह्म होने से ओंकार को सबसे श्रेष्ठ माना गया है और कायिक, वाचिक तथा मानसिक इन तीनों प्रकार के तपों से प्राणायाम श्रेष्ठ है, गायत्री मन्त्र को सब मन्त्रों से श्रेष्ठ इसलिए माना गया है कि यह मन्त्र 'सविता' सर्वोत्पादक परमात्मा का सर्वाङ्ग रूप से वर्णन करता है और 'मौनात्सत्यं विशिष्यते' का तात्पर्य यह है कि 'अकरणात्करणं श्रेयः' न करने से करना अच्छा

है, इस न्याय के अनुसार मौन धारण करने की अपेक्षा किसी सत्यता का प्रतिपादन करना उत्तम है।

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥१४॥

—[शंखस्मृति अध्याय १२][1]

अर्थ—जो मनुष्य सर्वदा व्याहृति, प्रणव, शिर इनके साथ गायत्री का जप करता है वह कभी भय नहीं पाता।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥

—[शंखस्मृति १२।२५][2]

अर्थ—जो मनुष्य नरक-(दुःख)-रूपी समुद्र में पड़े हैं उनका हाथ पकड़कर रक्षा करनेवाली गायत्री ही है। इस कारण नियमपूर्वक शुद्धता से ब्राह्मण नित्य गायत्री का अभ्यास करे।

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ।
गायत्रीजप्यनिरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥

—[शंखस्मृति १२।३०][3]

अर्थ—जो मनुष्य गायत्री जप में तत्पर है वह स्वर्ग (सुख) पाता है और गायत्री के जप करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ।
गायत्रीं तु जपेद् भक्तया सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥

—[शंखस्मृति १२।३१][4]

अर्थ—इस कारण सम्पूर्ण यत्न के साथ स्नान करने के पश्चात् पवित्र चित्त होकर, मन को रोक, सम्पूर्ण पापों के नाश करनेवाली गायत्री का जप करे।

---

१. "स्मृति-सन्दर्भः, तृतीयो भागः, पृष्ठ १४३५ [संवत् २००९ वि०, सन् १९५२ ई० में श्री मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित]
२. वही, पृष्ठ १४३६।
३. वही
४. वही

ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः।
गायत्र्या लक्षजाप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

—[संवर्तस्मृतिः, श्लोक २१९][1]

अर्थ—जो ब्रह्मचारी निराहार सब प्राणियों के कल्याण के लिए गायत्री को एक लाख जपता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत नियतः सदा।
स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥

—[संवर्तस्मृतिः, श्लोक २२२][2]

अर्थ—जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय होकर सर्वदा गायत्री का जप करता है वह वायु और आकाशरूप हो परमस्थान (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापेन लिप्यते ॥"

—[अत्रिस्मृतिः, अ० २, श्लोक ९][3]

अर्थ—जो ब्राह्मण गायत्री को १११० बार जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥

—[हारीतस्मृतिः ४।४८][4]

अर्थ—जो गायत्री को १११० बार जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता।

दर्भेष्वासीनो दर्भान्धारयमाणः सोदकेन पाणिना—
प्रत्यङ्मुखः सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेत् ॥

—[बौधायनस्मृतिः 'द्वितीय प्रश्ने, अ० ४ श्लोक ७][5]

१.-२. "स्मृतीनां समुच्चयः" पृष्ठ ४२३ [सन् १९२९ ई० आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना में मुद्रित व प्रकाशित, द्वितीयेयमङ्कनावृत्तिः]
३. वही, पृष्ठ २९।
४. पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित "बीस स्मृतियाँ" (द्वितीय खण्ड), पृष्ठ ३१० [सन् १९८० ई० में संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संशोधित संस्करण]।
५. "स्मतीनां समुच्चयः" पृष्ठ ४५२

अर्थ—पूर्व दिशा को मुख करके, जलसहित कुश को धारण किये गायत्री का एक सहस्र बार जप करे।

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥

—[बृहत्पराशरस्मृतिः, अध्याय ३, श्लोक ४][1]

अर्थ—जप करने योग्य सब सूक्तों में वैसा ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के और एक अक्षर आदि के मध्य में गायत्री जप श्रेष्ठ है।

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्री ब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्विजोत्तमाः ॥

—[पराशरस्मृतिः, अ० ८, श्लोक ३१[2]

अर्थ—गायत्री से रहित विप्र शूद्र से भी अधिक अपवित्र होता है। गायत्री-रूप ब्रह्म के तत्त्व को जाननेवाले द्विजश्रेष्ठ भली-भाँति पूजे जाते हैं।

यो ऽधीतेऽहन्यमानेतां गायत्रीं वेदमातरम्।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमाङ्गतिम् ॥

—[औशनसस्मृतिः, अ० ३, श्लोक ५३][3]

अर्थ—जो वेदमाता गायत्री का प्रतिदिन मानरहित होकर नित्य जप करता है और इसके अर्थ को समझते हुए जप करता है वह ब्रह्मचारी परमगति को प्राप्त होता है।

गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः।
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥४६॥
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपश्च त्रिः प्रकीर्तितः।
गायत्री चैव वेदांश्च तुलया तुलयन् प्रभुः ॥४७॥

—[औशनसस्मृतिः, अध्यायः ३, ब्रह्मचारीप्रकरणे गायत्रीमन्त्रसारवर्णनम्][4]

१. "स्मृति-सन्दर्भः, द्वितीयो भागः, पृष्ठ ७११ [संवत् २००९ वि० सन् १९५२ ई० प्रथम संस्करणम्, श्री मनसुखरायमोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता]।
२. वही, पृष्ठ ६५८।
३. स्मृति-सन्दर्भः, तृतीयो भागः, पृष्ठ १५६५।
४. वही, पृष्ठ १५६५।

अर्थ—वन में जाकर समाहित होकर नित्य ही एक सहस्र गायत्री का अध्ययन (जाप) करे। यदि इतना उत्तम न हो सके तो एक शत मध्यम जाप करे, यह भी न हो तो अन्तिम दश संख्या का जाप करे। ॥४६॥ गायत्री का नित्यही जप करना चाहिए जैसा कि तीन प्रकार का जाप बतलाया गया है। प्रभु ने चारों वेद और गायत्री को तुला से तौलते हुए एक में गायत्री को और एक ओर चारों वेदों को रक्खा था। ॥४१॥

अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य गुरुर्नारायणः स्मृतः।
छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥४५॥
ज्ञेयश्चाष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापप्रणाशनः।
सर्वदुःखहरः श्रीमान्सर्वकामफलप्रदः ॥४६॥

—[बृद्धहारीतस्मृतिः, अध्याय ६][1]

अर्थ—अष्टाक्षर के मन्त्र का गुरु नारायण, छन्द देवी गायत्री और परमात्मा देवता हैं ॥४५॥ अष्टाक्षर मन्त्र सब पापों का नाशक, सब दुःखों को नाश करनेवाला, और सब कार्यों में फलप्रद है ॥४६॥

जपेत्प्रणवपूर्वाभिर्व्याहृतीभिः सहैव तु ॥४५॥
तिसृभिर्भूः प्रभृतभिर्गायत्रीं ब्रह्मरूपिणीम्।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥४६॥

—[लघ्वाश्वलायनस्मृतिः, अ० प्रथम][2]

अर्थ—व्याहृतिसहित प्रणव (ओ३म्) मन्त्र का जप करे ॥४५॥ भूः प्रभृति गायत्री ब्रह्मरूपिणी है। ब्रह्मचारी व गृहस्थ १०८ बार जपे ॥४६॥

एकाक्षरेऽपि विप्रस्य गायत्र्या अपि पार्वति। —[गायत्री तन्त्रम्][3]

तृतीय पटलः

अर्थ—गायत्री के एक अक्षर को जाननेवाले ब्राह्मण को नमस्कार है।

---

१. "स्मृतीनां समुच्चयः" पृष्ठ २४७।
२. "स्मृति-सन्दर्भः, तृतीयो भागः, पृष्ठ १६८७।
३. "श्री मच्छङ्कराचार्यकृत" "गायत्री तन्त्रम्" 'तत्त्वदीपिका' हिन्दी व्याख्योपेतम् पृष्ठ ५८ व्याख्याकार-व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि पं० श्री शिवदत्त मिश्र शास्त्री [संवत् २०२६ वि० सन् १९६९ ई० में चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]

सर्वशास्त्रमयी गीता गायत्री सैव निश्चिता।
यागतीर्थञ्च गोलोकं गायत्रीरूपमद्भुतम् ॥१४४॥

—[गायत्रीतन्त्रम्][1]

तृतीय पटलः

अर्थ—यह गायत्री ही सकल शास्त्रमयी गीतास्वरूपा है और याग, तीर्थ, गोलोक आदि इसी गायत्री का स्वरूप है।

गायत्रीरहितो विप्रः स एव पूर्वकुक्कुरः ॥१४६॥

—[गायत्रीतन्त्रम्][2]

तृतीय पटलः

अर्थ—गायत्रीमन्त्र से रहित ब्राह्मण प्रत्येक जन्म में कुक्कुर होकर हड्डी खाता है।

गायत्रीरहितो विप्रो न स्पृशेत् तुलसीदलम् ॥१६२॥
हरेर्नाम न गृह्णीयाद् गायत्रीरहितो द्विजः।
महाचण्डालसदृश्यः किं तस्य विष्णुपूजने ॥१६३॥

—[गायत्रीतन्त्रम्][3]

तृतीय पटलः

अर्थ—गायत्री-विहीन ब्राह्मण देवताओं का तथा तुलसीदल का स्पर्श न करे ॥१६२॥ महाचण्डाल समान गायत्री-रहित ब्राह्मण होता है।

शाठ्यादवज्ञया भद्रेन न जपेत् तु द्विजो हि यः।
यवनस्य तु वीर्य्येण तस्य जन्म सुनिश्चयः ॥२४॥

—[गायत्रीतन्त्रम्][4]

चतुर्थ पटलः

अर्थ—जो ब्राह्मण शठता एवं अवज्ञा के कारण गायत्री जप नहीं करता, उसका जन्म यवन के वीर्य से हुआ है—ऐसा निश्चित ही जानना चाहिए।

---

१. वही, पृष्ठ ५८।
२. वही, पृष्ठ ५९।
३. वही, पृष्ठ ६०-६१।
४. वही, पृष्ठ ८०।

गायत्रीष्वप्यविश्वासो यस्य विप्रस्य जायते।
स एव यवनो देवि गायत्री स कथं जपेत् ॥२५॥

—[गायत्रीतन्त्रम्][1]
पंचम पटलः

अर्थ—"जिस ब्राह्मण का गायत्री में विश्वास नहीं है, वही यवन हैं, कारण कि हे देवि, यवन होने से ही वह गायत्री का जप नहीं करता।"

'गायत्री—स्त्री० [सं०] (१) एक अति पवित्र मन्त्र का नाम जो बड़े महत्त्व का है। यह शक्ति देवी है; ब्रह्मा की मानस पुत्री है तथा उनसे अलग नहीं है (ब्रह्मा० ४.४४.८६)। द्विजों में यज्ञोपवीत के समय इस मन्त्र का उपदेश दिया जाता है। इस मन्त्र का देवता सविता और ऋषि विश्वामित्र है। ब्राह्मणों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में इसका महत्त्व दिया है। इस वैदिक मन्त्र की उपासना बिना ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व ही नहीं आता। यह सारे धर्मों का आधार है। (भाग० मत्स्य० ३।३२; ४।७; ६।२४; ५३।२४; १७१।२३][2]

गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्रीत्यभिधीयते।
प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम् ॥

—[श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे, एकादशस्कन्धे, अध्याय ३ श्लोक ११][3]

अर्थ—जो गायत्री का तीन व्याहृतियों व प्रणवसहित जप करता है उसके शरीर की यह रक्षा करती है।

तावताकृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥६०॥

—[श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे, द्वादशस्कन्धे, अध्याय ८][4]

१. वही, पृष्ठ ८०
२. पं० राणा प्रसाद शर्मा कृत "पौराणिककोश" पृष्ठ १५२ [संवत् २०२८ वि० प्रथम संस्करण, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित]।
३. श्रीमद्देवीभागवतम् (महापुराणम्) साहित्य शास्त्रिणा पं० रामतेज पाण्डेयेन संस्कृतम्, पृष्ठ ७४२ [संवत् २०१९ वि० पण्डित पुस्तकालय, राजादरवाजा, वाराणसी १ द्वारा प्रकाशित]।
४. वही, पृष्ठ ८०८।

अर्थ—'केवल गायत्रीमन्त्र को जानने में दक्ष द्विज मोक्ष को प्राप्त होता है। इसके जप करने से ही सब कर्त्तव्य पूर्ण हो जाते हैं। द्विज को दूसरे कर्मों की अपेक्षा नहीं है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥

—[अग्निपुराणे, २१५ अध्याय, श्लो० ५][1]

अर्थ—"एकाक्षर (ओ३म्) पर ब्रह्म है। प्राणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री) से उत्तम दूसरा मन्त्र नहीं है, मौन से सत्यवाणी श्रेष्ठ है।"

एवं सन्ध्याविधिं कृत्वा गायत्रीञ्च जपेत् स्मरेत्।
गायञ्छिष्यान् यतस्त्रायेद् भार्य्यां* प्राणांस्तथैव च ॥१॥

—[अग्निपुराणे २१६ अध्याय, श्लोक १][2]

अर्थ—"इस प्रकार सन्ध्याविधि करके गायत्री जप व स्मरण करे। गायत्री शिष्यों की रक्षा करती है, जैसे शरीर प्राण की रक्षा करता है।"

"गयकं त्रायते पाताद् गायत्रीत्युच्यते हि सा।"

—[श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहितायाम् अ० १५ श्लोक १६][3]

गान करनेवाले का पाप से रक्षा करती है, इससे यह गायत्री कहलाती है।

गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी।
उभे ते सर्वपापानां नाशकारणतां गते ॥६३॥

—[नारद-पुराण अध्याय ६]

ऋ० कु० रामचन्द्र शर्मा सम्पादक 'सनातनधर्म पताका' कृत अनुवाद—"गायत्री छन्दों की माता है और गंगा लोकों की माता है, ये दोनों सब पापों के

१. "अग्निपुराणम्" (आचार्य पं० बलदेवोपाध्यायः द्वारा सम्पादित) पृष्ठ ३१३ [संवत् २०२३ वि०,।
* कहीं-कहीं 'कायान्' पाठ है।—(लेखक)।
२. वही, पृष्ठ ३१५।
३. पाण्डेय पं० रामतेज शास्त्री द्वारा सम्पादित "श्रीशिवमहापुराणम्" पृष्ठ ४६ संवत् २०२० वि० पण्डित पुस्तकालय, वाराणसी]।

नाश की कारण हैं।"[1]

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
गायत्र्या न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ।।

—[पद्मपुराणम् ३ स्वर्ग खण्डे, अध्याय, ५३, श्लोक ५८][2]

अर्थ—'गायत्री वेद की माता है और गायत्री लोकों को पवित्र करनेवाली है। गायत्री से अन्य श्रेष्ठ जप नहीं है। यह जानकर मुक्त होता है।'

गायत्री वेदजननी गायत्री ब्राह्मणप्रसूः।
गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन गीयते।"

—[स्कन्दपुराणम् ४ काशीखण्डे अ० ९, श्लोक ५३][3]

अर्थ—गायत्री वेद की माता व गायत्री ब्राह्मणप्रसूः है। यह शरीर की रक्षा करती है इसलिए इसे गायत्री कहते हैं।

सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ।।१५।।

—[श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणं, स्कन्द ११, अध्याय १६][4]

अर्थ—गायत्री सर्ववेदसारभूता है उसकी सम्यक् अर्चना (पूजा) समस्त वेदों की पूजा के समान है।

गायत्री मंत्र पर पाश्चात्य व प्राचीनार्वाचीन भारतीय विद्वानों के मत—

सर मोनियर विलियम (Sir Moniar William) अपनी पुस्तक The

---

१. "नारदपुराण, श्लोक और हिन्दी भाषाटीका सहित" पृष्ठ ६२ [मार्च सन् १९४० ई०, (संवत् १९९६ वि०) में सनातनधर्म प्रेस, मुरादाबाद द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]।

२. "पद्मपुराणम्" (भूमि-स्वर्ग-ब्रह्मखण्डात्मकम्)। द्वितीयोभागः, (मूलमात्र), पृष्ठ १६७ [संवत् २०१४ वि०, सन् १९५७ ई० में श्री मनसुखराममोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित]।

३. "स्कन्द महापुराणम् काशीखण्डात्मकः, चतुर्थोभागः (मूल), पृष्ठ ५७[संवत् २०१८ वि० सन् १९६१ ई० श्री मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित]

४. "श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्, (पं०रामतेज पाण्डेय शास्त्री द्वारा सम्पादित), पृष्ठ ७६५।

Budhsim (द बुद्धिज्म) में गायत्री मंत्र के विषय में लिखते हैं—

"ईसाई धर्म ईसा के बिना कुछ नहीं, मुस्लिम धर्म हजरत मुहम्मद के बिना कुछ नहीं, बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के बिना कुछ नहीं, यही पुरुष उनके ध्येय अथवा प्राण हैं, परन्तु मुझे सत्य कहने में संकोच नहीं, यद्यपि मैं ईसाई हूँ। हिन्दुओं का **ध्येय मंत्र गायत्री** है, जो बिना किसी ऋषि, मुनि या महान् पुरुष के जीवित रह सकता है। हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष मनुष्य पर नहीं है। इस मन्त्र के द्वारा सीधा परमेश्वर से हर एक मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।"[1]

सर एस० राधाकृष्णन् जी लिखते हैं—"The Gayatri, a prayer for renewal of our own lives. If we take up the universal prayer, the 'Gayatri', we find that it gives something real. The 'Gayatri' is a prayer for a passionati renewal of our own lives; it is a search; it is a quest and an adventure. There is no finality so for as reli- gious life and quest are concerned.

The term 'Philosopher' means not the teacher of truth, but the seeker of truth. It is only searching within oneself for guid- ance. It is not to be done in congregations. It is to be done in silence by each individual in and by himself. There is a saying in the book of revelation that when the angels went before God, there was a silence for half an hour. If that silence is necessary for angels, it is all the more necessary for human-beings.

The point is that one must have complete honesty and utter sincerety. Meditation is but communion with one's own inner- self, and it is there that we may see the connecting links bet- ween the soul and the universalself. The 'Gayatri' wants us to keep up that perpetual search". [The Hindustan'tims, January 11, 1936]

---

१. "श्री चिरंजीलाल वानप्रस्थकृत गायत्री-महत्व" पृष्ठ १९-२० [मार्च १९४९ ई० में संभम पब्लिपर्स लि०, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित, पंचम संस्करण]

अर्थ—'गायत्री' हमें फिर से जीवनदान देनेवाली प्रार्थना है। यदि हम सार्वभौमिक प्रार्थना 'गायत्री' पर विचार करें, तो हमें पता चलेगा कि इससे हमें सचमुच कुछ लाभ होता है। गायत्री हमारे अन्तर्गत पुनः जीवन का स्रोत उत्पन्न करने के लिए सच्ची आकुल प्रार्थना है। यह एक साहसिक अनुसन्धान है। जहाँ तक धार्मिक जीवन या खोज का सम्बन्ध है, कोई अन्तिम स्थिति नहीं है।

'फिलॉस्फर' (दार्शनिक) शब्द का अर्थ सत्य का शिक्षक नहीं है, वरन् सत्यता की खोज करनेवाला है। यह अपने मार्गदर्शन के लिए केवल एक अन्वेषण है। यह जनसमूह में नहीं की जा सकती। यह अन्वेषण प्रत्येक व्यक्ति को मौन होकर एकान्त, शान्त, अलग-अलग अपने अन्तस्तल में स्वयं करनी होगी। दैवी प्रकाशन पुस्तक (बाईबिल) में एक स्थान में कहा है—'जब फरिश्ते ईश्वर के सामने आये, तो आध घण्टे तक शान्ति रही। फरिश्तों के लिए शान्ति आवश्यक है तो मानव प्राणी के लिए और भी आवश्यक है। उसमें भी मुख्य बात, पूरी ईमानदारी, पूरी सत्यता है। ध्यान तो केवल अपनी अन्तरात्मा के साथ साक्षात्कार है। उसी में हम अपनी आत्मा और महान् परमात्मा के मध्य बँधी हुई सम्बन्ध की गाँठ देख सकते हैं। 'गायत्री' चाहती है कि हम लगातार उस अन्वेषण को चालू रखें।"

महात्मा गांधी (राष्ट्रपिता) गायत्री के सम्बन्ध में "यंग इण्डिया" २४ मार्च, १९२० ई०, हिन्दी प्रथम भाग, पृष्ठ ८८-८९, सत्याग्रह आन्दोलन प्रथम खण्ड] में लिखते हैं—

"इसके उपरान्त उपवास, व्रत, और प्रार्थना है। यह एक प्राचीन प्रथा है। पूर्ण उपवास शरीर, मन और आत्मा तीनों को शुद्ध करता है। इससे मज्जा गल-पचजाती है, अर्थात् आत्मा के ऊपर से निरर्थक बोझ का भार हट जाता है। यदि प्रार्थना हृदय से निकलती है तो उसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। प्रार्थना प्रकट करती है कि आत्मा एक उनन्त अवस्था से दूसरी उन्नतावस्था को पहुँचने के लिए आतुर हो रही है। इस प्रकार प्राप्त पवित्रता का प्रयोग जब उच्च तथा महती आकांक्षाओं से होता है तो वह सच्ची प्रार्थना कही जाती है। **गायत्री मन्त्र** का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने के लिए इसका प्रयोग, प्रार्थना की उस परिभाषा को जिसे हमने ऊपर दिया है, सर्वथा चरितार्थ करता है।

"यदि इसी गायत्री मन्त्र का जप अनवरत चित्त और शान्त हृदय से राष्ट्रीय आपत्काल में किया जाता है तो वह उन संकटों को मिटाने के लिए प्रभाव व पराक्रम दिखलाता है।

"जिन लोगों का यह विश्वास है कि मन्दिरों में जाकर गायत्री का जाप करना, मस्जिदों में पाँच समय नमाज पढ़ना और गिरजों में जाकर प्रार्थना करना केवल मूर्खता और अपढ़ लोगों को ठगने और धोखा देने की विडम्बना तथा अन्ध-विश्वास का नमूना है, वह भ्रम में फँसे हुए हैं, वरन् मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि इससे बड़ी कोई भूल मनुष्य से हो ही नहीं सकती।"[1]

"भगवान् गौतम बुद्ध ने 'सुत्तनिपात' में ब्राह्मणों के कर्म-विधान का कार्य वर्णन करते हुए वेद को मुख्यता दी और वेदाध्ययन में गायत्री मन्त्र पर विशेष बल दिया है।"[2]

स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिका में गायत्री मन्त्र पर एक भाषण दिया था जिसका सारांश यह था —"हिन्दू मूर्तिपूजक न थे, क्योंकि उनका ध्येय (Creed) मन्त्र गायत्री मन्त्र है, इस मन्त्र में "तत्" वह शब्द ही एक परोक्ष (Invisible) सृष्टिकर्त्ता अर्थात् सविता की ओर संकेत करता है। कई लोग इस मन्त्र को सूर्य की उपासनापरक बतलाते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि 'सविता' शब्द सृष्टि-कर्त्ता ईश्वर की उपासना के लिए है। इसके अतिरिक्त इस मंत्र में ज्ञान और बुद्धि के लिए प्रार्थना है, जो कि जड़ सूर्य कभी नहीं दे सकता। साथ ही एक विशेष बात यह है कि इस मन्त्र में "नः" शब्द समाज का वाचक है, अर्थात् स्त्री, पुरुष, शूद्र आदि मनुष्यमात्र को इसके जाप का अधिकार है।"[3]

श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ब्रह्मसमाजी थे। महर्षि दयानन्दजी की आपपर विशेष कृपा थी। जिस समय महर्षि दयानन्द जी कलकत्ते में प्रचारार्थ गये थे, उस समय आप श्री टैगोर जी के गृह पर पधारे थे जहाँ एक मण्डप था। एक वेदी बनी हुई थी। उसके चारों ओर संस्कृत के चुने-चुने श्लोक लिखे हुए थे, इसे देख महर्षि दयानन्द जी बड़े प्रसन्न हुए थे।

---

१. स्वामी प्रभु आश्रित जी कृत "गायत्री रहस्य" पृष्ठ ४७६-४७७ [संवत् २००७ वि० षष्ठम संस्करण, यज्ञ भवन, जवाहर नगर, सब्जी मण्डी दिल्ली द्वारा प्रकाशित]
२. "गायत्री-महत्त्व" पृष्ठ २०।
३. वही, पृष्ठ १८-१९।

उसी **महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर** ने लिखा है—"ओ३म् भूर्भुवः स्वः व्याहृति चारों ओर से एकत्रित करके ले आना होगा, पहिले भूर्भुवः स्वः इन तीनों लोकों अर्थात् समस्त जगत को अपने मन में धारण करना होगा। दूसरे शब्दों में यों समझो कि यह विचार करना पड़ेगा कि मैं किसी विशेष देश का निवासी नहीं, अपितु समस्त विश्वजगत् का अधिकारी हूँ। मुझे जिस राजभवन में निवास मिला है, यह लोक-लोकान्तर केवल उसकी एक-एक दीवार के समान है। इस प्रकार जो लोग यथार्थरूप में आर्य हैं, वह प्रतिदिन कम से कम एक बार अपने आपको सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारागण आदि के बीच में उपस्थिति देखते और उस पृथिवी की सीमाओं से बाहर निकलकर, समस्त संसार के साथ अपना अनादि सम्बन्ध अनुभव करते हैं, वैसे ही जैसे कि स्वास्थ्य का एक इच्छुक नित्यप्रति प्रातःकाल में एक विस्तृत मैदान में भ्रमण के लिए जाता है। नितान्त, उसी प्रकार आर्यपुरुष भी, दिन में एक बार अपने चित्त को निखिल ब्रह्माण्ड में प्रेरित किया करते हैं। वह इन असंख्य तारामण्डल से जुड़े हुए इस जगत् में खड़े होकर कौन-सा मन्त्र उच्चारण करते हैं?

"तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि"

"इस समस्त जगत् के प्रसविता (उत्पन्न करनेवाले) देवता के वरण करने के योग्य शक्ति का हम ध्यान करें।"

अर्थात्—इस अखिल जगत् में सर्वलोकेश्वर भगवान् की जो शक्ति प्रत्यक्ष हो रही है उसी का हम ध्यान करें। यह सारे का सारा जगत् उसी दम और हरदम उसी शक्ति से सदैव प्रकट हो रहा है। जिस जगत् को देखने और जानने से हम उसका कहीं अन्त नहीं पा सकते, वह समग्र भाव से उसी शक्ति से प्रेरित हो रहा है। उस विश्व प्रकाशक असीम शक्ति से हमारा लगातार सम्बन्ध किस सूत्र द्वारा स्थिर है? किस सूत्र का आश्रय लेकर हम उसका ध्यान करें? वह सूत्र है—

"धियो यो नः प्रचोदयात्"

जो भगवान् हमारी सकल बुद्धिवृत्ति (सोचने समझने की समस्त शक्ति) को प्रेरित करते हैं। उनमें प्रेरित होकर उसी की शुभ विचार तथा शुभ कल्याण-कारिणी बुद्धि के सूत्र को ही लेकर हम उनका ध्यान करें। हम सूर्य के प्रकाश को प्रत्यक्षरूप में किसकी सहायता से देखा करते हैं? सूर्य स्वयं अपनी जो किरण हमारे पास भेजता है, उसी का आश्रय लेकर हम सूर्य को देख सकते हैं। उसी

प्रकार सारे जगत् के प्रसविता भगवान् भी दिन-रात हमारे अन्दर अपनी "धी" (विचार) शक्ति की प्रेरणा करते रहते हैं, जिस शक्ति का आश्रय लेकर हम अपने आपको और समस्त जगत् के प्रत्येक व्यवहार को जान रहे हैं। बस "धी" शक्ति के द्वारा ही, हम शक्ति के प्रत्यक्ष भाव को अपने अन्दर आन्तरिकरूप से वैसे ही अनुभव करते हैं जैसे कि बाहर त्रिलोक के सूत्ररूप से हम चर-अचर जगत् में भगवान् को अनुभव करते हैं।

इसी प्रकार हम भगवान् को अपनी "धी" शक्ति का निरन्तर प्रेरक जानकर अबोधित भाव से (बिना किसी और सहायता के) अपने अन्दर अनुभव करते हैं, क्योंकि बाहर का संसार और हमारे अन्दर की बुद्धि दोनों एक ही शक्ति के विकास हैं। इस रहस्य को जानकर हम जगत् के साथ और अपने चित्त के साथ उस सत् चित् आनन्दरूप भगवान् के घनिष्ठ योग को अनुभव करते हैं और उसके प्रताप से अपने हृदय की संकीर्णता, संकोच, स्वार्थ, भय, दिखावे आदि से मुक्ति-लाभ करते हैं।

इस प्रकार हम गायत्री मन्त्र में बाहर के साथ अन्दर और अन्दर के साथ बड़े गहरे अन्तर गुफा में निवास करनेवाले भगवान् के साथ साधन (मेल-मिलाप) करते हैं और अपने चित्त की वृत्तियों को जोड़ते हैं।"[1]

श्रीमत्परमहंस शिवानन्दजी सरस्वती अपने एक लेख में लिखते हैं—"इस पृथिवी पर और स्वर्ग में भी गायत्री से अधिक पावन और कोई वस्तु नहीं है। गायत्री के जप से वही फल प्राप्त होता है जो चारों वेदों और वेदांगों के पाठ से मिलता है। इस मन्त्र का प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल जप करने से कल्याण की प्राप्ति होती है। यह वेदमन्त्र है, पापनाशक है और उत्तम स्वास्थ्य, सौन्दर्य, व्रत, वीर्य और ब्रह्मवर्चस् का देनेवाला है।"[2]

गायत्री जप का चमत्कार—गायत्री मन्त्र के जप से अनेक महापुरुषों के जीवन दिव्य हो गये हैं। यथा—

पण्डित तडित्कान्त जी वेदालंकार—मासिक पत्र "वैदिक धर्म" औंध, वर्ष

---

१. "गायत्री-रहस्य" पृष्ठ २९ से ३१ तक।

२ मासिक पत्र "मानव धर्म" दिल्ली, वर्ष १, अप्रैल सन् १९४२ ई०, संख्या ६ पृष्ठ ४७२।

१९, फाल्गुन १९५९ वि०, अङ्क ३, पृष्ठ २५३ कॉलम १ में लिखते हैं—

"'पञ्चदशी' के भाष्यकर्ता मध्वाचार्य जी के विषय में भी ऐसा प्रसिद्ध है कि वे अत्यन्त निर्धन थे। उन्होंने धन प्राप्ति के लिए 'गायत्री' का पुरश्चरण किया। पुनश्चरण की समाप्ति पर 'गायत्री' देवी प्रसन्न हुई। उसने दर्शन देकर वर माँगने को कहा। मध्वाचार्य ने धन माँगा। इसपर देवी ने कहा कि धन तो तुम्हारे नसीब में नहीं है। वह यह कहकर अन्तर्धान हो गई। इसपर मध्वाचार्य ने यह सोचकर जब मेरे नसीब में धन नहीं है संन्यास ले लिया। संन्यास लेकर जैसे ही गृहत्याग करने के लिए बाहर पैर रखा, स्वर्ण मोहरों की वर्षा होने लगी। परन्तु उन्होंने कहा कि अब मैं क्या करूँ? अब तो समय निकल गया।"

पुनः कॉलम २ में लिखते हैं—"एक दन्तकथा स्वामी दयानन्द जी के गुरु महाराज श्री स्वामी विरजानन्दजी के विषय में मिलती है। वह इस प्रकार है—"कहते हैं कि श्री स्वामी विरजानन्द जी सरस्वती ने गायत्री की महिमा से आकर्षित होकर तीन वर्ष तक नित्य नियमित गंगा नदी के जल में खड़े होकर 'गायत्री' का पुरश्चरण किया था और उसके परिणामस्वरूप उन्हें अलौकिक आत्मबल और विद्या प्राप्त हुई जिसका लाभ आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती को मिला।"

पुराणतत्त्व-प्रकाशादि ६० ग्रन्थों के लेखक, मनीषि, वैश्यकुलभूषण **श्री चिम्मन लाल जी** गुरु विरजानन्दजी के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"वह घर छोड़ तीन वर्ष तक अनेक कष्ट भोगते और वन के मार्ग से भ्रमण करते हुए ऋषिकेश पहुँचे जहाँ पर उन्होंने तीन वर्ष तक गंगा में खड़े होकर गायत्री का उत्तम रीति से जपकर मन और अन्तःकरणरूपी चक्षु में ज्ञानरूपी अंजन लगाकर प्रकाशित किया। इसके पश्चात् भी ऋषिकेश के निर्जन वन में तप करते रहे। थोड़े दिनों के पश्चात् एक रात्रि में आपको स्वप्न हुआ कि "जो तुमको होना था वह हो गया अब तुम यहाँ से चले जाओ।" तब वह १८ वर्ष की आयु में हरिद्वार आये जहाँ पूर्णानन्दजी सरस्वती से संन्यास ग्रहण किया। जिन्होंने उनका नाम विरजानन्द सरस्वती रक्खा।"[1]

व्याख्यान-वाचस्पति, **राज्यरत्न श्री आत्माराम जी** अमृतसरी लिखते हैं—

१. "सरस्वतीन्द्र जीवन चरित्र" पृष्ठ ५१ [जून १९८७ ई० में दयानन्द संस्थान वेद मन्दिर, शहीद लेखरामनगर, दिल्ली ३६ द्वारा प्रकाशित]

"गायत्री मंत्र दर्शाता है कि ईश्वर ज्ञानरूपी सूर्य है और जब-जब मनुष्य आरोग्यता तथा सदाचाररूपी तपस्या से बुद्धि को उन्नत तथा शान्त कर उसके ध्यान में निमग्न होते, वा उसमें समाधि लगाते हैं तो मानवी बुद्धि, ईश्वरीय ज्ञानरूपी सूर्य से योग्यतानुसार ज्ञान धारण करती है। इसीलिए गायत्री मंत्र की महिमा महान् कही गई है कारण कि यह मानवी ज्ञान की सीमा के रहस्य को यह कहकर बोधन करा रहा है जो बुद्धि ईश्वरीय ज्ञानरूप प्रेरणा का पात्र है, उसको ज्ञानमय ईश्वर, ज्ञान प्रदान करते हैं।"[1]

एक इतिहास प्रेमीजी अपने इतिहास में लिखते हैं—"सबसे ऊँचे मंत्र गायत्री में बुद्धि को बढ़ाने की आज्ञा है। 'बुद्धि' ही उन्नति का आधार है। संभव है, मानसिक संसार में तत्कालीन विज्ञान की कुछ विशेष सत्ता इस समय प्रतीत न हो परन्तु देशकाल के अनुसार वर्तमानकाल के आविष्कारों से उसकी सत्ता कहीं बढ़कर है।"[2]

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती भी लिखते हैं कि—"और जो अधिक आहुति देना हो तो 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव' (यजु० ३०।३)' इस मंत्र और पूर्वोक्त **गायत्री मंत्र** से आहुति देवें।—"[सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास]

पुनः—"इस प्रकार प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासना के पीछे इन पूर्वोक्त मन्त्रों से होम करके अधिक होम करने की जहाँ तक इच्छा हो वहाँ तक स्वाहा, अन्त में पढ़कर **गायत्री मंत्र** से होम करें।—"[पञ्चमहायज्ञविधि]

महर्षि दयानन्दजी की जीवनी में आता है कि मुँगेर में—"...स्वामीजी ने कहा कि यज्ञोपवीत जिससे लिया उसने **गायत्री** दी या नहीं? मैंने कहा कि अपने ग्राम के एक ब्राह्मण से लिया था। कहा कि वही गुरुमंत्र है और वही (मंत्र) गुरु है। स्वामीजी ने हमको गायत्री शुद्ध करा दी और उसका मार्जनादि भी बतला दिया और अष्टाध्यायी और लक्ष्मीसूक्त मुझको पढ़ने के लिए दिया और यही पुस्तकें

१. "सृष्टि विज्ञान" पृष्ठ १३४ [सन् १९१६ ई० में जयदेव ब्रदर्स, कारेलबाग, बड़ौदा द्वारा प्रकाशित]

२. "भारतवर्ष का इतिहास" पृष्ठ २५ [संवत् १९७९ वि० में ज्ञान मण्डल यंत्रालय, वाराणसी द्वारा मुद्रित व प्रकाशित, प्रथम संस्करण]

एक दिन का वर्णन है कि पण्डित पोलोराम को किसी ने एक नवीन कुरती दान की। वे उसे लिये श्री चरणों में आये और कहने लगे कि भगवन् ! यह कुरती आज ही मुझे एक दाता ने दी है। मेरा भक्तिभाव मुझे विवश करता है कि मैं इस से आपके चरण पोंछकर, फिर यह आपके किसी सेवक को दे दूँ। स्वामीजी तो नहीं मानते थे परन्तु भक्त पोलोराम ने प्रभु पाद-पद्म पकड़ लिये और कुरती से चरण-रज झाड़कर वह एक नौकर को प्रदान कर दी।

महाराज ने अपार दया से उनको उपदेश दिया कि "गायत्री का जप प्रतिदिन किया करो। यह कल्याणकारी मंत्र है। मेरे पास यही वस्तु है जो मैंने आपको दी है।"[1]

स्वामी दयानन्द द्वारा हेमचन्द्र के प्रश्नों का उत्तर—

प्रश्न—ईश्वर मूर्तिवाला साकार है वा निराकार है ?

उत्तर—निराकार है और सच्चिदानन्दस्वरूप है।

प्रश्न—उसके मिलने का क्या उपाय है ?

उत्तर—यथावत् योग करने से ईश्वर की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—वह योग किस प्रकार से है ?

उत्तर—अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इनकी व्याख्या कर कहा कि ३ घड़ी रात्रि से उठ शौच से निवृत्त हो निर्जन स्थान में पद्मासन लगा **गायत्री** का अर्थसहित ध्यान करे।"[2]

"फर्रुखाबाद में ला० मन्नीलाल और जगन्नाथ स्वामीजी के दर्शनों को गये। उस समय वह समाधिस्थ थे। ये लोग वहीं चुपचाप बैठ गये। जब उनकी समाधि भंग हुई तो उन्होंने पूछा कि गायत्री का क्या फल है ? तो उन्होंने कहा कि इससे बुद्धि शुद्ध होती है। और सन्ध्या में सबको गायत्री का जाप करना चाहिए।"[3]

"प्रयाग में महाराज के पास नाना प्रकार के तिलकधारी लोग बैठे थे, और

---

१. वही, पृष्ठ ३८७-३८८।

२. "सरस्वतीन्द्र जीवन चरित्र" पृष्ठ १०६ तुलना करो, महात्मा आनन्द स्वामीजी कृत "प्यारा ऋषि" पृष्ठ २६ [मासिक पत्रिका "आर्य प्रेमी" अजमेर संवत् २०१८ वि० अक्टूबर सन् १९६१ का विशेषांक]

३. "प्यारा ऋषि" पृष्ठ १४।

स्वामीजी उन्हें कह रहे थे—मस्तक शृंगार करने की अपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा आत्मशृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है—शोक ! महाशोक !! तिलक आदि चिह्न बनाने में लोगों की रुचि है। योगाभ्यास में नहीं। मूर्खो ! जितने समय में तुम यह तिलक लगाते रहे। इतने समय में **गायत्री** क्यों न जप ली।"[1]

"प्रयाग के माधव बाबू का हृदय-मन्दिर अश्रद्धा और अविश्वास के तिमिर से काला हो गया था। वह आचारहीन भी हो गये थे। महाराज के चरणों में पहुँचे तो जीवन पलट गया। माधव बाबू ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सन्ध्या, हवन और **गायत्री** जाप करने लगे। यह बदले हुए माधव बाबू ग्वालियर में अपने मित्र शरत्चन्द्र चौधरी के पास गये तो वह घबराया कि इस मांस, सुरापान करनेवाले को अपने पास कैसे ठहराऊँगा। पर अगली प्रातः को जब देखा कि माधवबाबू तो प्रभुभक्त बन गये हैं, तो चकित रह गये। माधवबाबू ने बतलाया कि यह स्वामी दयानन्द की कृपा है। दूसरी प्रातः माधवबाबू खड़े होकर जाप कर रहे थे। जप-समाप्ति के पश्चात् शरत्बाबू ने खड़े होकर जाप करने का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि स्वामीजी का आदेश है कि सन्ध्योपासना के पश्चात् खड़े होकर एक सहस्र गायत्री जपने से पूर्वकृत दुष्कर्मों का मालिन्य नष्ट हो जाता है।"[2]

"···आजकल ऋषि दयानन्द आदि धर्म और ब्रह्मज्ञान के प्रचारकों से, जब किसी जिज्ञासु ने उपदेश चाहा या अपने कल्याण की बात पूछी, तो उन्होंने गायत्री मंत्र का अर्थसहित जाप करने का ही उपदेश दिया।

ऋषि दयानन्द के उपदेश सुनने के लिए एक धुनिया भी आया करता था। एक दिन उसने अपने कल्याण के लिए ऋषिवर से उपदेश चाहा और निवेदन किया—"मैं कुछ पढ़ा-लिखा नहीं। आपके उपदेश विद्वत्तापूर्ण होते हैं। इसलिए मुझ मूर्ख को भी कोई कल्याण का मार्ग बताने की कृपा कीजिए।

इसपर ऋषि ने उसे अर्थसहित गायत्री मंत्र लिखकर दिया और उससे कहा, "इस मंत्र और इसके अर्थ को स्मरण कर जाप करते रहो। साथ ही रूई के व्यवहार में सच्चे तथा ईमानदार रहने का प्रण करो। इसी से तुम्हारा कल्याण हो

---

१. वही, पृष्ठ २३।

२. वही, पृष्ठ २४-२५।

ब्रह्मचारी पढ़ा करते थे।"[1]

गुजरात में जलालपुर मार्ग पर फतेहसर बाग (अब पश्चिमी पाकिस्तान) में १३ जनवरी १८७८ ई० में महर्षि दयानन्दजी ठहरे थे।

वहाँ उन्होंने प्रथम व्याख्यान वेद, द्वितीय ब्रह्मचर्य और तृतीय संध्या पर दिया था। [इसका वर्णन करते हुए श्री हरबिलास शारदाजी लिखते हैं:—The third was Sandhya. Swamiji explained the Gayatri so nicely and Maulvi Muhammad Din was so impressed that he got up and declared that he would recite it in place of his namaz."[2]

अर्थात्—"तृतीय व्याख्यान 'सन्ध्या' पर था। स्वामीजी ने गायत्री की ऐसी सुन्दर व्याख्या की और मौलवी मुहम्मद दीन इससे इतना प्रभावित हुआ कि उसने उठकर घोषणा की कि वह नमाज़ के स्थान में इसे (गायत्री) को पढ़ेगा।"

"माघ बदी १२ संवत् १९२१ को स्वामीजी महाराज ग्वालियर में आये। उस समय उनके साथ चार विद्यार्थी थे। वहाँ उन्होंने रामकुई बापू आपाड़ जरनैल के गंगा-मन्दिर में डेरा किया। उन दिनों महाराजाजी ने राजधानी में भागवत का सप्ताह बड़ी धूमधाम से बिठलाया था। दूर-दूर के पण्डित लोग बुलाये गये थे। श्री महाराज ने अपने कर्मचारियों द्वारा भागवत सप्ताह का माहात्म्य श्री स्वामीजी से भी पुछवाया। उत्तर में श्री स्वामीजी महाराज ने कहा—ऐसे कार्यों के फल कष्ट-क्लेश से भिन्न कुछ नहीं हुआ करते। विश्वास न हो तो करके देख लो।" यह सुन-कर महाराज हँस कर बोले, "स्वामीजी संन्यासी है, इसलिए चाहे जो कह सकते हैं, पर हम गृहस्थ हैं। हमें तो सब-कुछ करना ही पड़ता है अब तो वैसे भी सप्ताह की सामग्री का उद्योग पूर्ण कर लिया है।" अन्त में स्वामीजी को महाराज की ओर से कथा में सम्मिलित होने के निमित्त निमन्त्रण आया। उसके उत्तर में स्वामीजी

१. पं० लेखरामजी लिखित "जीवन चरित्र-महर्षि दयानन्द सरस्वती" [उर्दू भाषा से आर्यभाषा में कविराज रघुनन्दनसिंह 'निर्मल' द्वारा अनुवादित], पृष्ठ २११ [विक्रम सं० २०४१ में आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५ खारी बावली, दिल्ली-६ द्वारा प्रकाशित, द्वितीय बार]

२. Life of Dayanand Saraswati world teacher" pp. 189 [सन् १८४६ ई० में वैदिक यंत्रालय, अजमेर द्वारा मुद्रित व प्रकाशित]

ने कहला भेजा—"गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिए। भागवत के सप्ताह में हम सम्मिलित नहीं होंगे।" इस विषय में भी राजा ने यही कहा कि भागवत सप्ताह का तो अब पूर्णरीति से उद्योग हो चुका है। ऐसे समय में गायत्री पुरश्चरण कैसे किया जा सकता है?

सम्पूर्ण राज्य में प्रसन्नता का सागर उमड़ पड़ा था। सारा नगर स्वच्छ, सुसिक्त और सुसज्जित था। काशी के, कलकत्ते के, दक्षिण के, तथा अन्यान्य स्थानों के अनेक शास्त्री-शिरोमणि निमन्त्रण होकर आये थे। आसपास के राज्यों के सुप्रतिष्ठित सज्जन और राजा लोग तथा राजबन्धु वर्ग आकर स्ववेश-भूषा से नगर की शोभा बढ़ा रहे थे। समग्र राज्य की विभूति वहाँ एकत्रित हो रही थी। उत्तुंग राज-प्रासाद से लेकर एक घसियारे की पर्ण कुटी तक, सब कहीं एक उत्सव मनाया जा रहा था। घर-बाहर, हाट-बाट, जहाँ देखो भागवत-कथा की चर्चा चल रही थी। उसी समय श्री स्वामीजी महाराज ने रामकुई पर भागवत-खण्डन पर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। उन निर्भय परमहंसजी के व्याख्यानों में भी भारी भीड़ होने लगी। स्वामीजी की अभयता ने नगर-निवासियों को भी निडर बना दिया। उत्साह से भागवत-खण्डन सुनते और स्वामी कथन की सत्यता को स्वीकार करते थे। स्वामीजी यह भी कहते थे कि लश्कर में बड़ा भारी विघ्न होनेवाला है। महा उपद्रव उपस्थित हुआ है।

सप्ताह-समाप्ति पर सारी राजधानी में प्रसन्नता के बाजे बजे, परन्तु तुरन्त ही जब लोगों ने सुना कि महारानी का पंचमासिक गर्भ गिर गया है तो सारी प्रसन्नता एकाएक शोक-सागर में डूब गई। उसी मास विसूचिका महारोग भीषण रूप से नगर में फैला। छोटे राजकुमार जिनको दीर्घायु की कामना से कथा बिठलाई गई थी और जिस कुमार को सप्ताह समाप्ति पर पंडितों ने आशीर्वाद दिया था, उसका देहान्त हो गया। इससे नगरी सहित सारे राज्य में हाहाकार मच गया।"[1]

१. स्वामी सत्यानन्दजी कृत "श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश" पृष्ठ १००-१०१ [दीपावली २०२० वि० वर्ष १०, अंक १० मासिक पत्रिका "तपोभूमि" मथुरा का विशेषांक] तुलना करो राव साहब रामविलास शारदा कृत "आर्य धर्मेन्द्र जीवन" पृष्ठ ३०-३१ [संवत् १९८१ वि०, चतुर्थ संस्करण, वैदिक यंत्रालय अजमेर]

जाएगा ।"[1]

"रियासत जयपुर में सच्चिदानन्द को स्वामीजी ने ईश्वर उपासना के मंत्र का उपदेश कर रक्खा था, जिससे वह सायंकाल सूर्य के सम्मुख खड़ा होकर उसका जाप किया करता था वह मंत्र गायत्री था।"

"मुलतान में उपदेश के समय स्वामीजी ने गायत्री मंत्र का उच्चारण किया और कहा कि यह मंत्र सबसे श्रेष्ठ है और यह भी कहा कि चारों वेदों का यही मूल-गुरुमंत्र है। सब ऋषि-मुनि इसी का जाप किया करते थे।"

"फर्रुखाबाद के पण्डितों के प्रश्न और स्वामीजी के उत्तर। प्रश्न २४ का उत्तर—गायत्री जप जो वेदोक्त रीति से करें तो फल अच्छा होता है कारण उसमें गायत्री के अर्थानुसार आचरण करना लिखा है।"

"रियासत जयपुर के इलाके के हीरालाल कायस्थ से मांस, मदिरा और मूर्ति-पूजा छुड़वाई। गायत्री याद करवायी।...उपासना की विधि लोगों को **सन्ध्या गायत्री** बतलाते थे।"

स्वामीजी की आज्ञानुसार अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, राम-घाट, जहाँगीराबाद से अनुमानतः चालीस के लगभग विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जप करने के लिए बुलाये गये और जप अर्द्ध शुक्लपक्ष में पूरा हुआ।"[2]

पं० श्री राम शर्मा आचार्य ने "गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें उन-उन व्यक्तियों की घटनाएँ दी हुई हैं जिनको गायत्री जपने से लाभ हुआ है।

□□
□
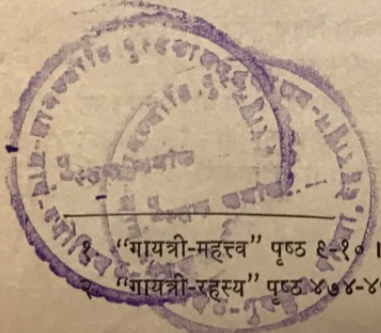
१. "गायत्री-महत्त्व" पृष्ठ ९-१०।
२. "गायत्री-रहस्य" पृष्ठ ४७४-४७५।

लेखक की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

१.	जादूविद्या-रहस्य	२०.००
२.	अथर्ववेद की प्राचीनता	००.४०
३.	भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि	००.५०
४.	आर्यसमाज के द्वितीय नियम की व्याख्या	००.५०
५.	महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन	५.००
६.	भारतीय इतिहास और वेद	००.५०
७.	ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात	००.५०
८.	आर्यसमाज में मूर्तिपूजाध्वान्तनिवारण	००.५०
९.	वामनावतार की कल्पना	००.५०
१०.	वैदिक काल में तोप व बन्दूक (अप्राप्य)	००.५०
११.	उपनिषदों की उत्कृष्टता	००.२५
१२.	महर्षि दयानन्दजी की दृष्टि में 'यज्ञ'	००.२५
१३.	वैदिक शासन पद्धति (अप्राप्य)	००.५०
१४.	पाश्चात्यों की दृष्टि में वेद ईश्वरीय ज्ञान	००.४०
१५.	बाइबिल में वर्णित बर्बरता तथा अश्लीलता का दिग्दर्शन	(अप्राप्य)
१६.	आचार्य दयानन्द सरस्वती और मसीही मत पर्यालोचर	(जब्त)
१७.	पाश्चात्यों की दृष्टि में इस्लामी-प्रवर्तक	००.५०
१८.	सत्यार्थप्रकाश भाष्य तृतीय समुल्लास	१.००
१९.	सामवेद का स्वरूप	००.२५
२०.	'वैदिक एज' पर एक समीक्षात्मक दृष्टि	१.००
२१.	गायत्री माहात्म्य	(अप्राप्य)
२२.	भ्रमनिवारण (जैनमत का थोथा अहिंसावाद)	००.२५
२३.	वैदिक देवता-रहस्य	(अप्राप्य)
२४.	महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज को समझने में पौराणिकों का भ्रम	००.५०
२५.	शिवलिंग-पर्यालोचन	००.५०
२६.	अष्टादशपुराण-परिशीलन	१.००

२७. नीर-क्षीर-विवेक (अप्राप्य)
२८. वैदिक सिद्धान्त मार्तण्ड १.००
२९. आर्यों का आदि जन्म-स्थान निर्णय ००.४०
३०. श्रीमद्भागवत महापुराण में व्याकरण की अशुद्धियाँ ५.००
३१. इन्द्र-अहल्या उपाख्यान : वास्तविक स्वरूप और महर्षि दयानन्द १.००
३२. सत्य साईं का कच्चा चिट्ठा ६.००
३३. क्या अथर्ववेद में मृतक श्राद्ध है ? (अप्राप्य)
३४. मार्कण्डेय पुराण की आलोचना १.००
३५. नारद पुराण का आलोचनात्मक अध्ययन १.००
३६. 'आचार्य महीधर और स्वामी दयानन्द का माध्यन्दिन भाष्य' का आलोचनात्मक अध्ययन २.५०
३७. हनुमान् का वास्तविक स्वरूप ५.००
३८. अद्‌भुत वैज्ञानिक जादू कौशल १०.००
३९. मनोवैज्ञानिक जादूविद्या का चमत्कार ५.००
४०. गणित के जादू (अप्राप्य)
४१. लड़खड़ाते जीवन (उपन्यास) ००.५०
४२. मेरी आठ रोचक कहानियाँ ००.७५
४३. राठौड़ कुलोत्पत्ति मीमांसा ५.००
४४. कुशवाहा क्षत्रियोत्पत्ति मीमांसा (कछवाह खण्ड) ५.००
४५. कुशवाहा क्षत्रियोत्पत्ति मीमांसा ५०.००
४६. क्या अहीर, गूजर और जाट विदेशी हैं ? १०.००

प्राप्ति स्थान—डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाह
शास्त्री, एम० ए०
वेद मन्दिर (गीता आश्रम)
अशोक सिनेमा के सामने,
ज्वालापुर-२४९४०७
जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)
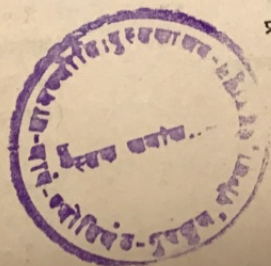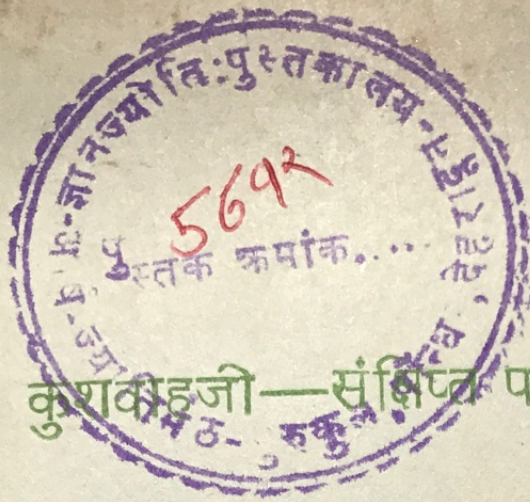
कुशवाहजी—संक्षिप्त परिचय

जन्मतिथि—१ जून १९२४ ई०

जन्मस्थान—ग्राम-पत्रालय = गौरा, वाया = छपरा, जनपद = सारण, (बिहार)

शिक्षा—आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए०, साहित्यलंकार हिन्दी विद्यापीठ, देवघर तथा साहित्यविशारद परीक्षाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से उत्तीर्ण कीं।

मई, १९८४ में सेवा-निवृत होते-होते सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से सहित्यशास्त्री।

सेवा—१९४४ से ३९ वर्ष तक ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन० लि० की शाखा कूपर ऐलन में तथा टैफको (केन्द्रीय सरकार का संस्थान) में नौकरी की।

साहित्य सेवा—नौकरी करते हुए जिस प्रकार आपने परीक्षाएँ पास कीं उसी प्रकार वैदिक धर्म की सेवा लेखों व व्याख्यानों द्वारा करते रहे। अब तक लगभग ७५० लेख समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। ४६ पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। एक पुस्नक उत्तर प्रदेश सरकार ने जब्त कर ली थी।

सम्प्रति आप वेद मन्दिर [गीत-आश्रम] ज्वालापुर-२४९४०७, जनपद सहारनपुर, (उत्तर प्रदेश) में निवास करके वेदानुसन्धान का कार्य तथा व्याख्यानों द्वारा वैदिक धर्म की सेवा कर रहे हैं।

विशिष्ट कला में दक्ष—आप जादूविद्या में दक्ष हैं और उसका प्रदर्शन करके जनता को चकित कर देते हैं। उनका कथन है कि जादू एक ललित कला है, कोई मन्त्र-तन्त्र नहीं वरन् हाथ की चालाकी है।